मनोरंजन पुस्तकमाला—३२

संपादक

श्यामसुंदरदास बी ए

प्रकाशक

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

महाराज रणजीतसिंह

लेखक

वेणीप्रसाद

१९७७

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, बनारस मे मुद्रित ।

मूल्य १)

भूमिका

आज से केवल पचहत्तर वर्ष पहले भारत के विस्तृत भूभाग पर हिंदुओं का एक ऐसा प्रबल स्वतन्त्र राज्य था, जिससे काबुल का अमीर भय खाता था जिससे सरहद्दी मुसलमान सामना करने का साहस न कर अपने पठानी और अफगानी जोश को भुला कर भागे भागे फिरते थे और जिससे बराबरी की मित्रता रखने ही में बृटिश सिंह भी अपनी खैर समझता था। उस राज्य के प्रतिष्ठाता राजा रणजीतसिंह का हाल सब ही जानना चाहेंगे। प्रबल प्रतापी बृटिशसिंह ने "पंजाब केसरी" (The Lion of the Panjab) के नाम से संबोधन कर यह सिद्ध कर दिया था, कि वास्तव में रणजीतसिंह का प्रताप भी उससे कुछ कम न था और वह उसे अपनी बराबरी का समझता था। उसी रणजीतसिंह की एक विस्तृत जीवनी, जो कि एक उपयुक्त जीवनी कहला सके, अब तक हिंदी में न थी। आशा है, यह पुस्तक उस अभाव की बहुत कुछ पूर्ति करेगी। इसे पाठ करनेवाले को रणजीतसिंह की कार्यतत्परता, आत्मविश्वास और दृढ़ अध्यवसाय से लाभ उठाना चाहिए। इन बातों की आजकल भारत में बहुत कमी है और येही बात सारे ऐहिक और पारलौकिक सफलता की मूल हैं। किस तरह तनिक से अदने जागीरदार ने इस अपढ़, "निरक्षर भट्टाचार्य" ने प्रबल प्रतापी बृटिश सिंह की बगल में एक वैसा ही प्रतापी स्वतन्त्र हिंदू

राज्य स्थापित कर लिया और उस बढती हुई विदेशी शक्ति से अपने जीवन काल में ठोकर लगने की बारी न आने दी, यह बात पढने और आलोचना करने योग्य है और हमे इस बात का पता देती है कि इन गए गुजरे दिनों में भी हिंदू दिमाग मे प्रथम श्रेणी की राष्ट्र परिचालनोपयोगी क्षमता है, उपयुक्त क्षेत्र ही के अभाव से इस बीज का अकुर नहीं निकलने पाता। पाठको से विनीत निवेदन है कि वे बडी सूक्ष्मदृष्टि से 'पजाब केसरी' के दाव घात को पढें और उसकी दूरदर्शिता और अनुभव से उपदेश प्राप्त कर न्यायशील बृटिश गवर्मेंट के अधीन रह कर अपनी उन्नति में रतचित्त हों।

विनीत—

ग्रथकार।

अध्याय सूची ।

विषय पृष्ठांक

प्रस्तावना

चाहे किसी प्रकार से हो प्राणों की रक्षा हो और भर पेट भोजन मिले, इसकी चिंता सब प्राणियों को है। एक ऐसी शक्ति भीतर से इस बात की प्रेरणा कर रही है कि इसके लिये मनुष्य सब कुछ करने को तैय्यार रहता है। मनुष्य ही क्यों, सारे जीव जंतु, इतर वृक्ष, पल्लव इत्यादि भी अपना भोजन खोज कर प्राण धारण की चेष्टा में सतत मग्न हैं। जिन्हें हम जड जगत् के नाम से पुकारते हैं वे भी इस चेष्टा से खाली नहीं है। बड़े बडे ग्रह, उपग्रह, सूर्य्य, तारामडल आदि निरंतर अपनी रक्षा करनेवाले पदार्थसमूह की ओर बडे वेग से धावमान हैं। एक से एक सँधे हुए चक्कर लगा रहे हैं और परस्पर एक प्रकार का आकर्षण विकर्षण कायम किए हुए, एक दूसरे की रक्षा करते हुए अपने अस्तित्व को कायम किए हुए हैं। योंही कीट पतग, पेड पल्लव इत्यादि प्राणियों से लेकर इस आश्चर्य सृष्टि के श्रेष्ठतम नमूने मनुष्य तक इसी नियम में बँधे निरंतर भोजन समह के अर्थ नाना प्रकार की क्रियाएँ कर रहे है। किसी प्रकार जब तक हो सके शरीर बना रहे और ससार के पदार्थों के भोगने में हम सक्षम रहें, इसके अर्थ बडे बडे विद्वानों ने उपाय सोचने में, शुरू से आज तक, अपना जीवन व्यतीत कर दिया और बडे बडे वैज्ञानिक आविष्कार कर डाले। कुछ दिनो तक इन उपायों की बदौलत

ज वह सुख चैन से रह और इस जीवन समाम में आलसी या पिछड़े रहनेवालों को कुचलते रौंदते हुए उज्ज्वल धूमकेतु की तरह आकाश के इस प्रांत से उस प्रांत को विभासित कर फिर उसी आकाशही मे लीन भी हो गए। इसी प्रबल जीवन समाम की चेष्टा में न जाने कितनी जातियाँ नष्ट हो गई, कितने नगर भस्म हो गए, सहस्रों वर्षों के परिश्रम की सभ्यता धूल में मिल गई, जिसने कुछ दिनों तक इस समाम में सफलता लाभ की, जो भोजन और चैन की सामग्री को यथेष्ट एकत्रित कर सका और अपने निर्बल भाइयों को अपने परिश्रम और योग्यता से अर्जित लाभ का हिस्सा दे सका वह बड़ा शूरवीर, धीर, प्रतापी और धर्म्मात्मा कहलाया। जिसने केवल मार काट, दौड़ धूप, लूट पाट और झूठमूठ के उच्चाभिलाप के वश वर्ती होकर ससार के कष्ट की सीमा बढ़ा दी वह राक्षस कहलाया और ससार उसे पापी के नाम से याद करता है। पहले यों ही प्रत्येक मनुष्य अपनी उदरपूर्त्ति की चेष्टा आप करता था। पत्थर के ढेले या औजारों से अपने से निर्बल जीवों को मार कर वह उदरपालन करता था। उसे और किसी की सहायता की विशेष आवश्यक्ता न थी। पर धीरे धीरे जब उसे भोजन अन्वेषणार्थ दूर दूर भटकने की जरूरत पड़ी तो उसने परस्पर सग मिलकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना सीखा। जब वह दूसरों के सग मिला तो एक दूसरे की सहायता करने से कार्य्य भली प्रकार सिद्ध होता है यह देख उसने 'परस्पर की सहायता' अर्थात् सभ्यता का पहला सबक सीखा। परस्पर की सहायता से अब उदरचेष्टा के अर्थ इनमे से कुछ लोगों को थोड़ी थोड़ी फुरसत

मिलने लगी जिससे ये लोग कुछ सोचने में समर्थ हुए और धीरे धीरे भोजन की चेष्टा के सुगमतर उपाय उद्भावित होने लगे। लोहे के औजार बने। हल जोत कर खेती होने लगी। अन्न उत्पन्न होने लगा। अन्न उत्पन्न करके उसे सचित रखने की चिंता पड़ी। यही अर्थशास्त्र (Political Economy) की पहली सीढ़ी की नींव पड़ी। अन्न से नाना प्रकार की सम्पति की उत्पति हुई, क्योंकि हमारे भारतवर्ष मे कहावत मशहूर है कि "अन्न धन महाधन"। नाना प्रकार की सपत्ति की उत्पत्ति होने पर उसकी रक्षा और वृद्धि के उपाय सोचे जाने लगे। इन उपाय सोचनेवालों में जो सब से विचक्षण हुआ और जिस के बतलाए हुए उपाय से ठीक ठीक कार्य्य सिद्ध होने लगे उसे लोग अपना प्रधान मानने लगे। यहीं से राजा की उत्पत्ति हुई। यह प्रधान पुरुष केवल उपाय उद्भावन करता और इतर जन उसकी आज्ञा पालन करते और बदले में उसे पृथ्वी की उपज का कुछ हिस्सा देते थे। यहीं से इकमटैक्स की उत्पत्ति समझिए। इकमटैक्स नया नहीं है ? न जाने कितने लाख या करोड़ वर्षों से यह चला आया है। पर हाँ, कमी बेशी की बात मैं नहीं कहता। यह प्रधान जो समय पाकर राजा कहलाया, इस कर के बदले में हर तरह से प्रजा की रक्षा करने लगा। जब मनुष्यो की कोई ऐसी ही टोली हुई जिसका नायक ऐसा बुद्धिमान् न था कि दूसरे के अनुकूल रह कर अपनी सपत्ति की वृद्धि कर सकता तो उसकी टोलीवालो में जीव जगत् की एक सहज प्रवृत्ति, ईर्षा, की उत्पत्ति हुई और वे उक्त टोलीवालों पर चढ़ाई कर जबरजोरी उनकी सपत्ति हरण करने के उत्सुक

हुए, जिससे युद्ध और युद्धास्त्र की उत्पत्ति हुई। चढ़ाई करने वाला अधर्मी, लालची कहलाया और अपने परिश्रम-लब्ध धन की रक्षा के अर्थ जिसने शस्त्र उठाया वह धर्मात्मा योद्धा कहलाया, यहाँ तक कि धर्मयुद्ध में मरने से उसे हाथों हाथ स्वर्ग मिलेगा, पीछे से ऐसा विश्वास भी दृढ़ होगया। धीरे धीरे ज्यों ज्यों सम्पत्ति बढ़ती गई, झगड़ा भी बढ़ता ही गया। यही पापी पेट सब अनर्थों का मूल हुआ या यों कहिए कि सारी सभ्यता का मूल हुआ। बड़े बड़े प्रबल प्रतापी राजे महा राजे, वीर, योद्धा धर्म्म अधर्म्म दोनों ही पक्ष से अपना विक्रम दिखाते रहे। बूढ़े भारत का इतिहास तो इनकी कहानियों से भरा पड़ा है। उनके किए हुए घावों का चिन्ह उसके अंग से अभी तक न मिटा। अब देखें पश्चिमी मरहम पट्टी और बिजली के इलाज से शायद यह फिर बेदाग हो जाय। भारत में जब जब धर्म्म पक्ष वाले अदल परिवर्तन के नियम में पड़ कर अधर्म्म के गड्ढे में जा पड़े और बहुत हीन हो गए तो फिर से चक्र घूमा और एक अवतार हुआ जिसने उनको फिर एक बार सत्य सनातन मार्ग दिखाया। अवतार क्या? वही विचक्षणतम क्योंकि जो पहले राजा कहलाया अब अवतार कहलाता है। गीता में कहा है "नराणां च नराधिप" इसी अवतारी पुरुष ने या मर्यादा पुरुषोत्तम ने फिर से उस गिरी जाति को सँभाला और उसे ठीक रास्ते पर लगाया। गुरु गोविंदसिंह की जीवनी में हम कह चुके हैं कि किस तरह समयोपयोगी "नानकजी" का अवतार हुआ और किस प्रकार उनका बोया हुआ बीज समय पाकर गुरुगोविंदसिंह रूपी प्रकाण्ड वृक्ष में परिणत हुआ। आज हम जिस महापुरुष

री कहानी लिखने बैठे हैं वह गुरु साहब के वृक्ष का एक परिपक्व फल था, जिसके स्वाद चखनेवाले शायद अब भी दस बीस बूढ़े भारत में विद्यमान होंगे।

जिस समय गुरु गोविंदसिंह अवतीर्ण हुए थे उस समय मुगल साम्राज्य की जड़ में घुन लग चुका था। पंजाब और मालवा देश में इनके प्रचार और उद्योग से जाटों ने, जो बहुत दिनों से किसानी का काम करते आए थे, अस्त्र विद्या सीखी और समय पाकर गुरु साहब की अद्भुत शिक्षा की बदौलत अच्छे अच्छे योद्धा बन गए। जो पीढ़ियों से हल चलाते आते थे उन्होंने तलवार के कब्जे पर हाथ रक्खा और मुगलों के हृदय पर ऐसा हल चलाया कि गिरता हुआ मुगल साम्राज्य शीघ्र ही छिन्न भिन्न हो गया और उसी उर्वरा रणभूमि में 'गुरु की सिक्खी' के प्रताप और राज्यविस्तार का बीज अंकुरित हुआ। गुरु गोविंदसिंह के स्वर्गारोहण के बाद उनके प्रतापी शिष्य भाई बंदा ने सारे पंजाब और मालवे को हिला डाला, मुगलों की अमलदारी में दिन दोपहर मनमाना अत्याचार और लूट पाट की। जो कोई चोटी या जनेऊ दिखा पाया, वही बचा, बाकी सब तलवार के घाट उतार दिए गए और उनके निवासस्थान लूट पाट कर भस्मीभूत कर दिए गए। लूट पाट के लालच में कई गरोह प्रबल डाकुओं के भी इनके साथ होगए, जिनमें से कितनों ही ने 'गुरु की सिक्खी' कबूल कर ली। सारा पंजाब और मालवा इस गरोह के प्रताप से थरथर काँपने लगा। समय पाकर करीब एक लाख से भी अधिक सिक्ख भाई बंदा के झंडे तले आ गए और वे

दिल्ली की दीवारों तक लूट पाट मचाने और खिराज वसूल करने लगे। दिल्ली के बादशाह की ओर से इन्हें दबाने के लिये, साम, दाम, दंड, भेद सभी नीतियाँ वर्ती गईं पर कुछ फल न हुआ। मुगल साम्राज्य की जैसी हीन अवस्था हो रही थी उस अवस्था में उन्होंने कई बार बहुत सा रुपया देकर भी भाई बंदा से जान बचाई। भाई बंदा की मृत्यु के बाद सिक्खों में दो दल हो गए, पर लूट पाट और मुसलमानों पर अत्याचार का काम ज्यों का त्यों जारी था। ये लोग मरहठों की तरह जब जहाँ मौका देखते छापा मारते और हर तरह से गिरते हुए मुगल राज्य को और भी शीघ्रता से गिराने में सहायक होते थे। जब कि औरंगजेब के बाद सब ही सूबों ने अपने अपने इलाकों में स्वतंत्र होने की ठानी थी तो कइयों ने इस काम में सिक्खों से भी सहायता ली और बदले में उन्हें द्रव्य तथा कहीं कहीं जागीरें भी दीं। जो गरोह इस प्रकार से अधिकतर बलवान् हुआ उसने कुछ कुछ धरती भी हथिया ली। जब अपना बल इन्हें ठीक ठीक मालूम होने लगा तो जमीन के मालिक बनने की भी उत्कट इच्छा हो आई। तभी तो हर एक गरोह अलग अपना अपना नाम रख कर कुछ कुछ जमीन हथियाने की चेष्टा में लगा और इस प्रकार से पंजाब और मालवा से मुगलों की अमलदारी धीरे धीरे बिलकुल जाती रही और सिक्ख सर्दार लोग जहाँ जिसने जो पाया उसीके स्वामी हो बैठे। ये लोग अपनी गरोहों को मिसल के नाम से पुकारते थे और जिस सरदार ने पहले पहल जो मिसल स्थापित की थी उसीके नाम से वह मिसल विख्यात हुई, जैसे कि भंगी सर्दारों की मिसल। इसका

सरदार बहुत भाँग पीता था इस लिये यह 'मिसल' इस नाम से प्रसिद्ध हुई। येही भंगी सरदार लोग पंजाब में सब से पहले बहुत बलवान हुए। कई लाख की आमदनी का मुल्क इनके कब्जे में आ गया और सारे मिसलवाले इनसे डरने और इनको अपना बड़ा मानने लगे। यद्यपि भंगी सरदार लोग बहुत बलवान् हुए पर अन्य मिसलवाले पूरी तरह से उनके अधीन न थे। जब सामना होता तो दब जाते, पर मौका पाकर फिर स्वतंत्र रूप से लूट पाट करते और जागीरें दखल किया करते थे। भाई बंदा की तरह भंगी सरदार सारी सिक्ख जाति के नायक नहीं हो सके, क्योंकि इस समय अफगानिस्तान की ओर से प्रायः अहमदशाह दुर्रानी की चढ़ाइयाँ हुआ करती थीं और सिक्खों को समय समय पर इस कारण से हानियाँ भी उठानी पड़ती थीं, पर ज्यों ही दुर्रानी पीठ मोड़ते सिक्ख लोग फिर से प्रबल हो जाते और लूट पाट मचाने लगते। अब सिक्खों के बारह गरोह या मिसल हो गए थे जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१ फुलकिया	मिसल	७ करोरासिंहिया	मिसल
२ अहलूवालिया	,,	८ निशानिया	,,
३ भंगी	,,	९ सुकरचकिया	,,
४ कन्हैया	,,	१० दूलेलवालिया	,,
५ रामगढ़िया	,,	११ नक्की	,,
६ सिंहपुरिया	,,	१२ शहीदा	,,

इनमें से फुलकियाँ मिसलवालों के वंशधर महाराज

पटिआला, झींध और नाभा है। अहलूवालिया मिसल का आदि पुरुष सरदार जस्सासिंह बड़ा प्रतापी हुआ। भंगी सरदारों में जिनका उल्लेख ऊपर आ चुका है सरदार हरिसिंह नामी हुआ। कन्हैया मिसल के सरदार भी भंगियों से बल और प्रताप में कुछ कम न थे। इस घरानेवालों ने महाराज रणजीतसिंह से वैवाहिक संबंध स्थापित करके बहुत दिनों तक अपना बल को कायम रखा। रामगढ़िया सरदारों में सरदार जस्सासिंह बहुत प्रसिद्ध हुआ, यहाँ तक कि यह दिल्ली की दीवारों तक चढ धाया और चार तोपें छीन लाया। मेरठ का गवर्नर तक इसे कर देता था। सिंहपुरिया मिसल में सरदार कपूरसिंह नामी हुआ जो कि नव्वाब कहलाता था। करोरासिंहिया मिसल सरदार करोरासिंह के नाम से विख्यात हुआ। निशानियाँ मिसलवाले विशेष प्रसिद्ध न हुए। सरदार जयसिंह जो इनमें विशेष प्रसिद्ध हुआ अंबाला इत्यादि कई जिलों का स्वामी था। सुकरचकिया मिसल को रणजीतसिंह ने सब से अधिक प्रसिद्ध किया। सारी मिसलों को उसने अपने अधीन करके सब का बल नष्ट कर दिया था। केवल दो एक जो भागकर अँगरेजों की शरण आए बच सके थे।

दूल्लेवालिया का प्रसिद्ध पुरुष सरदार तारासिंह हुआ। यह जालंधर दुआब के बहुत से भाग का स्वामी था। नक्की सरदार विशेष प्रसिद्ध न हुए पर सरदार हीरासिंह और रामसिंह की अधीनता में इन्होंने समय पाकर नौ लाख की वार्षिक आय का देश अपने अधीन कर लिया था। अंतिम शहीदा मिसलवाले धन या भूमि के कारण विख्यात न थे। इनका

सर्दार सदासिंह खालसा पंथ के तीर्थस्थान तलवंडी का महंत था। इसने जलंधर के शासक को मारा और इसके कथन ने कई शत्रुओं को मारा था, इसलिये इसकी मिसल शहीदा (शहीद) नाम से विख्यात हुई। कुछ थोडी सी जायदाद और खालसा पंथ के तीर्थस्थान दमदमा साहब की साहबी इनके पास है। ये बारहो मिसलवाले नित्य नवीन उपद्रव खडा करते थे। कभी मुगलो के इलाके पर चढ जाते, कभी आपस में भी भिड पडते और कभी काबुल की ओर से आए हुए अहमदशाह दुर्रानी, नादिरशाह इत्यादि प्रबलतर डाकुओं से हार कर कुछ काल के लिये शांत भी हो बैठते थे, पर ज्योंही पठानो के ये प्रबल सरदार पीठ मोडते ये लोग फिर उत्पात मचाने लगते और अपनी पहली कार्रवाई पर सन्नद्ध हो जाते थे। अंत को हार कर अहमदशाह दुर्रानी को सरहिंद के इलाकों पर इनका प्रभुत्व मानना पडा। पर जैसे भाई बंदा के अधीन मिल कर इन्होंने प्रबलता दिखाई थी, वैसे फिर कभी ये अपना बल न दिखा सके। कारण, ये बारहो मिसलें परस्पर भी प्राय लड़ा झगडा करती थीं, जिससे जत्था बाँध कर ये लोग अपने को एक प्रबल शक्ति के रूप में न दिखा सके, नहीं तो मरहठों की तरह इनका भी एक प्रबल हिंदू साम्राज्य स्थापित हो जाता। हर एक मिसल अपनी अपनी 'ढाई चावल की खिचडी' अलग पकाती हुई गुरु गोविंदसिंह की शिक्षा से बहुत दूर जा पडी थी और जब तक इसी में से 'सुकरचोकिया' मिसल नाम की एक मिसल का सरदार रणजीतसिंह का अभ्युदय हुआ, तब तक इनकी यही दशा

थी। रणजीतसिंह के होते ही सुकरचकिया मिसल ने जोर पकड़ा और अपने बुद्धिबल और सर्वोपरि बाहुबल से उसने एक एक करके इन बारहों मिसलों के बल को नष्ट करके सब पर अपना प्रभुत्व जमा लिया और पंजाब में 'गुरु की सिक्खी' के अंतिम 'कोहनूर' को चमका दिया। क्योंकर उसने अपने उद्देश्य में सफलता लाभ की यह आगे के पृष्ठों में लिखा मिलेगा।

पंजावकेशरी

महाराज रणजीत सिंह।

पहला अध्याय।

रणजीत के पूर्वपुरुष।

किसी कवि ने कहा है कि "आकारे पद्मरागाना जन्म काचमणे कुत " अर्थात् पद्मराग-मणि की खान से कॉंच नहा निकल सकता। पद्मराग मणि 'माणिक' को कहते हैं। अस्तु, जिस वृक्ष का जैसा बीज होता है उसका फल भी वैसा ही होता है, इस लिये जब हम रणजीत सिंह की वशावली की खोज करते हुए उसके पूर्व पुरुष के मूलस्थान में विक्रमी सवत् के चलानेवाले विख्यात विक्रमादित्य के प्रतिद्वदी 'शक' प्रवर्त्तक शालिवाहन को पाते हैं तो अनायास ही हमारे मुँह से उपरोक्त कवि का वचन निकल आता है। इसी शालिवाहन ने प्रतापी सम्राट् विक्रमादित्य को मार कर उज्जैन का राज्य हस्तगत किया और अपने नाम से 'शक' सवत् चलाया जो विक्रम सवत् के साथ साथ अब तक प्रचलित है। जैसे कि आज कल विक्रम सवत् १९७६ है वैसे ही शालिवाहन शाका १८४१ भी चलता है।

पजाब की स्यालकोट नगरी इसी शालिवाहन की बसाई हुई है। कुछ दिनों बाद उज्जैन त्याग कर शालिवाहन ने इसी नगरी को अपनी राजधानी बनाया था। इनके सोलह पुत्र थे, जिनमे सब मे बडा पुत्र पूरन भगत हुआ जिसकी फकीरी और भक्ति की चर्चा आज दिन भी पजाब के घर घर में है और जिसकी भक्ति और करुणारसपूर्ण कहानी को आज भी पजाब की ललनाएँ बडे प्रेम से गाती हैं। काल बडा बली है, जिस शालिवाहन ने एक समय मे प्रतापी विक्रमादित्य को हराया था उसीके वशधरों को विदेशी शत्रुओं से हार कर पहाडो मे भाग जाना पडा। शालिवाहन से सोलहवीं पीढी में भागमल्ल अमृतसर के निकट मुगलों के अधीन तहसील तरनतारन का तहसीलदार हुआ। समय जो चाहे सो कराने। 'भरी ढुरकावे, ढुरी भरावे' यही इसका हाल है। जब छठे गुरु हरगोविंद जी ने पजाब मे वीरव्रत का उपदेश देना प्रारभ किया, उस समय एक दिन यह भागमल्ल भी गुरु साहब के उपदेश सुनने गया था। गुरु की वाणी का उसपर बडा प्रभाव पडा और गुरुजी के नामी शिष्यों में उसकी गिनती प्रथम कही जा सकती है। प्रभावशाली शिष्यों में यही प्रथम था जिसने गुरु हरगोविंद जी को बहुत कुछ धन रत्न और अस्त्र शस्त्र भेंट देकर उनके उद्देश्य की सफलता में बहुत कुछ सहायता पहुँचाई थी। केवल इतने ही से सतुष्ट न होकर अपने युवा पुत्र बुड्ढासिह को उसने गुरु की सेवा में छोड दिया। यह बुड्ढासिंह या भाई बुड्ढा गुरुजी का बड़ा पक्का भक्त निकला और उनके आज्ञानुसार फौजी कवायद इत्यादि

सीख तथा वीरव्रत को धारण कर गुरुजी तथा खालसा पंथ के लिये प्राण देने को तैयार रहने लगा। जब आनदपुर के किले पर शत्रुओं ने चढाई की थी तब यह गुरु गोविद सिंह जी की ओर से लडा था। यह सर्दार बुड्ढासिंह बडा बली और प्रतापी था और दिलीमी नाम की एक उम्द घोडी इसके पास थी। इसी पर चढ कर यह अपने पचास साथियों के सग घूमा करता और गुरु जी के विरोधियों को लूटा करता था। गुरुजी के लिये प्राण देने के बाद इसके दो पुत्र बचे थे जिनका नाम झडासिंह और नवधा सिंह था। ये दोनो भाई भी पिता की तरह बली और प्रतापी थे। अपने साथियों के साथ ये प्राय मुगलो के इलाके पर चढ जाते और धन रत्न अस्त्र शस्त्र जो पाते लूट लाते थे। इन दिनो यही हाल सर्वत्र था। सिक्खों की प्रत्येक मडली लूट मार ही से अपना गुजारा करती थी। गिरता हुआ मुगल साम्राज्य ही सब के लिये सहज शिकार था। ये लोग जब मौका देखते मुगलो के इलाको पर चढ जाते तथा लूट पाट करते और जब प्रबल सेना का सामना होने की नौबत देखते तो भाग कर पहाडी जगलो मे जा छिपते जहाँ इनका पता लगाना कठिन होता था। जब मुगलो ने देखा कि ये यो नहीं पकडे जाते तो पहाडी जाटो को प्रत्येक सिक्ख के पकडवाने के लिये ये पचास रूपया पुरस्कार देने लगे और भोले जाट द्रव्य के लालच से सिक्खो को पकडवाने लगे। यह उपद्रव देखकर, इन दोनों भाइयों ने इधर उधर का घूमना छोड कर गुजराँवाला (पजाब) के इलाके में 'सुकरचक' नाम का एक गाँव बसाया और वहाँ अपना निवासस्थान स्थिर कर लिया।

सवत् १७८७ विक्रमी मे यह गाँव वसा था। अस्तु, तभी से इस मडली का नाम सुकरचकिया मिसल हो गया। ये दोनों भाई बलवान् योद्धा थे ही, जब इन्होने एक स्थान पर पैर जमा पाया तो धीरे धीरे आस पास के निर्बल ग्रामो पर भी छीन झपट कर वे अपना अधिकार जमाने लगे। उन दिनों 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' वाली कहावत चरितार्थ होती थी। निर्बलों को भूमि को अधिकार मे रखना असभव सा हो रहा था। इन योद्धा बधुओ ने बहुत थोडे दिनो में कई इलाको पर अधिकार कर अपना बल बहुत बढा लिया और वे कई हजार सवारों के नायक हो गए। इसी छीना झपटी की धुन मे सवत् १७९३ विक्रमी में इन भाइयो ने पठानो के एक इलाके 'मजेठी' पर चढाई की। यद्यपि यह इलाका 'सुकरचकिया' के हस्तगत हुआ पर इस युद्ध मे बडी वीरता से युद्ध कर सर्दार नवधा सिंह मारा गया। सर्दार नवधा सिंह का पुत्र चरत सिंह था। यह चरत सिंह अपने चाचा झडा सिंह की निगहबानी मे पलने लगा तथा चाचा ने इसे सब तरह की युद्ध विद्या सिखाई। युवा होने पर यह बडा वीर और साहसी निकला तथा हरएक मौके पर अपने चाचा का साथ युद्धक्षेत्र मे देने लगा। जिस समय अहमदशाह दुर्रानी ने पजाब पर चढाई की, उस समय उसके मुकाबले मे इसने बडी वीरता दिखाई थी।

इसी प्रकार से मुसलमानो के विरुद्ध कई लडाइयो म इसने अपने चाचा की अच्छी सहायता की और मौके मौके से लूट पाट कर बहुत सा द्रव्य भी एकत्र किया। जब कुछ द्रव्य

पास होगया तो इसने अपना सैन्यबल बढाया और अपने चाचा से अलग होकर गुजरॉवाला के हाकिम हमीद खा पर चढाई कर दी। यद्यपि यह मुगल सर्दार बड़ी वीरता से लड़ा पर 'खालसा की तलवार' का तेज नहीं सम्हाल सका और उसे विवश हो अपना इलाका छोड कर भाग जाना पडा। चरत सिंह ने बडी खुशी से गुजरॉवाला मे सम्वत् १८०७ विक्रमी मे प्रवेश किया और वहॉ अपना अधिकार अच्छी तरह जमाने के लिये एक मजबूत किला बनवाया, जिसमे मौके मौके पर तोपें इत्यादि बैठा कर उसे खूब सुरक्षित किया, तथा जिसमे धीरे धीरे बहुत सा अस्त्र शस्त्र और युद्धोपयोगी सामान इकट्ठा कर लिया। एक हजार 'खालसा सवार' इसके अधीन थे। अब तो खाली बैठे इसके हाथ खुजलाने लगे। यह अपने योद्धाओ के साथ लाहौर पर चढ दौडा। इस चढाई मे और मिसल के सर्दार लोग भी इसके साथ थे। लाहौर पर इस समय मुगल सर्दारों का शासन था। सबों ने मिल कर इस गरोह का सामना किया। खूब जम कर तलवार चली। अत मे सिक्खों की ही जीत हुई और उन्होंने खूब मनमानी लूट मचाई। लूट पाट मचा कर बहुत सा द्रव्य लेकर सब लोग लौट आए। नगर पर अधिकार करने की बारी न आई। यहॉ से वापस आकर योद्धा चरतसिंह खडे पैर स्यालकोट के हाकिम पर फौज चढा ले गया। थोड़ी ही लडाई के बाद स्यालकोट का मुगल हाकिम नगर छोड़ कर जम्मू भाग गया, तथा चरत सिंह ने स्यालकोट में प्रविष्ट होकर खूब मनमानी लूट मचाई। लूट में बहुत सा द्रव्य और कई तोपें लेकर यह अपने किले

गुजराँवाला में लौट आया। कुछ दिनो के बाद जब गुजराँ-वाला के मुसलमान हाकिम ने काबुल के अहमदशाह दुर्रानी के आगे जाकर अपना रोना सुनाया तो सवत् १८१७ विक्रमी मे उक्त शाह बीस हजार पठान सेना और कई तोपो के साथ गुजराँवाला पर चढ आया और उसने गुजराँवाला के किले को घेर लिया। इस प्रबल सेना से मैदान मे सामना करना नीतिविरुद्ध समझ कर चरतसिंह किला बद कर बैठा रहा और उसने अपनी सहायता के लिये अपने चाचा झडा सिंह को बुला भेजा। पठान लोग किले की दीवार गिराने के लिये गोले बरसा रहे थे और उधर से भी बुर्जियो पर से तोपें आग उगल रही थी जिससे पठानों की भी कम हानि नहीं हो रही थी। कई दिनो तक इस प्रकार की लडाई जारी रही, पर किला टूटने का कोई लक्षण न दिखाई दिया और न किले की तोपो की मार मे कुछ क्षीणता दिखाई दी। बहादुर चरत सिंह बडी धीरता से किले के भीतर से युद्ध करता हुआ अपने चाचा के आने की बाट जोह रहा था। अत को गुप्तचर ने आकर सवाद दिया कि चाचा झडा सिंह निकट आ पहुँचे हैं और रात की अँधेरी में पीछे से पठानो पर हमला करेंगे। यह सवाद पाते ही चरत सिंह फूले अग न समाया और आज सध्या हो जाने पर भी उसने लडाई समाप्त न की वरन् किले की तोपें से और भी तेजी के साथ आग उगलवाने लगा। दिन भर की लडाई से थक कर पठानो की तोपे कुछ मदी हो चली थी। यद्यपि शुक्लपक्ष की चाँदनी रात थी पर बारूद के धुँएँ से युद्धक्षेत्र अधकारमय हो रहा था। हाथ पसारा

नहीं सूझता था । इसी बीच में अभी दो घड़ी रात भी नहीं गई थी कि झंडा सिंह ने अपने दो सहस्र सवारों के साथ एकाएक पीछे से चढाई कर दी । इधर से किले के बाहर निकल कर वीरवर चरत सिंह ने भी हमला कर दिया। पहले ही हमले में इन लोगों ने तोपों पर अधिकार कर लिया और फिर वे पठानों को अपनी तलवारों का मजा चखाने लगे। पठान विचारे दिन भर के थके माँदे दोनों ओर से घिर कर शत्रु की सख्या का कुछ अनुमान न कर सके और जी छोड़ कर भाग निकले। अब तो बहादुर सिक्खों ने इनका पीछा किया और कई मील तक वे इन्हें खदेड़ते चले गए। अत को ये थक कर वापस आए। यह युद्ध बड़े मार्के का हुआ और तीन हजार पठानों ने रणभूमि मे शयन किया। इधर की हानि, युद्ध की तेजी को देखते हुए बहुत कम हुई थी। अब तो युवा चरत सिंह की हिम्मत बहुत बढ गई और दो ही दिन बाद वह शहर वजीराबाद पर जो दुर्रानी के वजीर के अधीन था चढ धाया और एक साधारण युद्ध के बाद यह इलाका उसके अधीन हुआ तथा वहाँ का पठान शासक भाग गया। इस नगर पर दखल जमा कर चरत सिंह ने यह इलाका अपने ससुर, भाई गुरबख्श सिंह को दे दिया। कुछ दिन सुस्ता कर दूसरे वर्ष इसने रोहतासगढ पर चढाई कर दी। यद्यपि यहाँ का सुबेदार बडी वीरता से लडा, पर एक भेदिये के द्वारा चरत सिंह को किले मे प्रविष्ट होने का एक गुप्त मार्ग मालूम हो गया जिस कारण यह अनायास ही किले में प्रविष्ट हुआ और रोहतास के शासक को भाग कर अपनी जान

पडी। रोहतास अधिकार में आने के कारण कई मुख्य मुख्य नगर इसके अधिकार में आ गए, जहाँ पर इसने अपने कई नामी सर्दारों को एक एक कंपनी फौज के साथ नियत कर दिया।

इसके बाद बहादुर चरत सिंह ने स्यूनमियानी पर धावा किया और वहाँ के अधिकारी भगी सर्दारों को हरा कर निमक की खान पर अधिकार जमा लिया। भगी सर्दार लोग इस समय पजाब मे बडे प्रतिष्ठित गिने जाते थे, सो उन्हे हराने से पजाब भर मे चरत सिंह की धाक बैठ गई और जहाँ देखो वहाँ वीरवर 'चरता' की चर्चा होने लगी। सर्दार चरत सिंह का भाग्य खूब चमका। वह जहाँ जाता विजय पाता था। भगी सर्दार लोग जिन्होंने आजतक किसीसे नीचा नहीं देखा था, चरतसिंह से हार कर बहुत कुढने लगे और हर दम अपने अपमान का बदला लेने के सोच में रहने लगे। इसका एक मौका भी आ गया। बात यह हुई कि इस समय जम्मू के हिंदू राजा रणजीत देव की अपने पुत्र मे कुछ अनबन हो गई और उसने राजकुँवर को राज्य से निकाल दिया। युवराज बडा क्रोधी और पराक्रमी था। उसने कुछ सेना इकट्ठी कर के जम्मू पर चढाई करने की तैयारी की और बहादुर चरतसिंह को भी अपनी सहायता के लिये बुला भेजा। राजा, चरतसिंह का आना सुन कर बहुत भयभीत हुआ। उसने अपने पुत्र के पास सधि के अर्थ दूत भेज दिया तथा दूसरी ओर चरत सिंह के शत्रु भगी सर्दारों को इनसे युद्ध करने के लिये बुला भेजा। एक ओर से सुकरचकिया और दूसरी ओर से भगी सर्दार

जम्मू की ओर जा रहे थे कि मार्ग ही में दोनों की भेट हो गई। परस्पर वैर तो था ही। भेंट होते ही खचाखच तलवार चलने लगी। सर्दार चरतसिंह घोडे पर सवार था और निशाना ताक ताक कर गोली चला रहा था। एकाएक सर्दार की बंदूक फट गई और वह तत्क्षण घोड़े पर से गिर कर परलोक को सिधारा। अपने शूर वीर सर्दार के मारे जाने से सुकरचक्यिों का हौसला टूट गया और वे मैदान में अधिक न टिक सके। इधर भगियों का भी सर्दार झंडासिंह मारा गया। अस्तु, थोडी सी लडाई के बाद दोनों मिसलवाले में सुलह हो गई। जब जम्मू के राजा ने देखा कि भगियों के सर्दार के बुलाने से कुछ मतलब नहीं निकला तो उसने अपने लडके को कुछ जागीर दे कर राजी कर लिया और भगियो के सर्दार को सवा लाख रुपया देकर विदा किया। यह रुपया दोनों मिसलों ने बराबर बाँट लिया। भगी सर्दार अब तक भी बड़े प्रबल थे और चरतसिंह के पुत्र माहा सिंह और महेजा सिंह इनसे शत्रुता रखना नहीं चाहते थे वरन इन्हें अपना मित्र बनाने की चिंता में थे। एक कारण और भी हुआ था। वह यह था कि इन्हीं दिनों भगी सर्दारों में आपस में मारकाट होने लगी थी। यह मौका अच्छा देख कर सर्दार माहा सिंह ने भगियों के कई इलाके हथिया लिए। इस पर भगी सर्दार लोग और भी चिढ गए और सबों ने मिल कर अब की 'सुकरचक्यिा' मिसल को मटियामेट कर देना चाहा। सर्दार माहा सिंह बडा चतुर था। संकट आया जान उसने एक चाल खेली। उसकी एक बहन 'राजकुँवर' बडी सुंदर और युवा

थी। माहा सिंह ने भंगियों के एक सर्दार गुर्जरसिंह से उस कुमारी का विवाह कर दिया और यों उसे अपना हिमायती बना लिया। अब तो भंगियों की कुछ न चली। उधर उसका अपना विवाह झींद के राजा गजपतसिंह की कन्या से हुआ जिससे उसका बल और भी बढ़ गया। अब तो सर्दार गुजरसिंह की हिमायत और अपने ससुर की सहायता पाकर माहा सिंह ने अपने बली सर्दार जयसिंह घुन्निया के साथ अहमदाबाद पर चढ़ाई कर दी ओर वहाँ के मुसलमानी हाकिम अहमदखाँ को परास्त कर एक बड़ी भारी नामी तोप छीन ली। इधर कई मिसलों के सर्दारों को इसने युद्ध में परास्त कर के कैद कर लिया और बहुत सा रुपया नजराने में ले कर तब उन्हें छोड़ा। इस प्रकार सुकरचकिया मिसल का बल और प्रताप दिन दिन बढ़ता जाता था और बाकी के सारे मिसल इनसे दबने लग गए थे, पर माहा सिंह का पुत्र तो ऐसा प्रतापी हुआ कि उसने सब मिसलों का चिन्ह तक मिटा दिया और वह पंजाब का एकछत्र महाराज कहलाया। उसका हाल आगे के अध्याय में लिखा जायगा।

दूसरा अध्याय।

रणजीत का जन्म और बाल्यकाल।

रणभूमि में शुभ संवाद।

शीत का समय है। सनसनाती हुई तीखी हवा रोम रोम को भेद कर कलेजा जकड़े देती है। अभी सूर्य्य भगवान उदय नहीं हुए हैं। उनकी अगवानी के लिये उषा देवी ने भी अभी तक सिर से काली रजाई नहीं उतारी है। आकाश में तारे जगमगा रहे हैं, पर प्रातःकाल की सूचना देनेवाली ठंडी दक्खिनी हवा अपने शीतल मंद झकोरों से एक प्रकार की ताजगी का सँदेसा दे रही है जो फिर दिन भर नसीब नहीं होती है। सर्दी के दिनों में गरम लिहाफ का मजा छोड़ कर जो उठ बैठते और इस समय मैदान की सैर करते हैं वेही इस छटा और हवा का आनंद अनुभव कर सकते हैं, यह कह कर समझाया नहीं जा सकता। ऐसे समय में चाहे अमीर लोग भले ही लिहाफ लपेटे पड़े रहें पर प्रकृति देवी का आनंद लेनेवालों या बड़े कार्य्य का संपादन करनेवालों ने लिहाफ उतार कर दूर फेंक दिया और वह देखिए चंद्रमा की प्रातःकालीन चाँदनी में कुछ सवार घोड़ा दौड़ाए इधर आ रहे हैं। कुछ निकट आने पर विदित हुआ कि ये लोग सिक्ख सवार हैं क्योंकि लंबी काली दाढ़ी और हाथ का चमकता हुआ भाला उनके वेष और जाति का पता दे रहा था। ये सवार

था। द्वार की बुर्जियों पर के सिपाहियों ने जो आँख मलते उठे थे इन लोगों की यह कार्रवाई देख कर एकबार ही इन तीनों पर गोली मारी। दो सिपाही गोली खा कर नीचे गिर गए और तीसरा यद्यपि घायल हो गया था पर भीतर जा कर वह दीवार से कूद पडा। अब तो डका पिट गया और नगररक्षक को खबर मिलते ही बहुत से सिपाही फाटक की ओर दौडे, पर जबतक ये लोग दौडे तबतक भीतर जो सिपाही कूदा था उसने बडी फुर्ती से फाटक का हुडका सरका दिया और खटका होते ही बाहर से सवारो ने एक बार ही ऐसा धक्का मारा कि फाटक चौचक खुल गया और सिक्ख योद्धा नगर के भीतर प्रविष्ट हो गए। नायक सब के आगे था। फाटक खोलनेवाला तो घोडों की टापो के नीचे कुचल कर कहाँ चला गया किसीने देखा भी नहीं, क्योकि भीतर पहुँचते ही गोलियों की ऐसी बोछार से इन सवारो की अभ्यथना हुई कि अपने घायल साथी को बचाने का इन्हें मौका ही न मिला। अब तो दो तरफा सनासन गोलियाँ चलने लगीं और बहादुर सिपाही गिरने और आगे बढने लगे। सिक्ख जवानों ने म्यान मे तलवार निकाल ली और गोलियो की वर्षा को सावन भादों की झडी समझ कर और निधडक आगे बढकर उन्होंने विपक्षियो को आडे हाथ जा लिया। खालसा की तलवार रणचडी वेष मे नाचने लगी। एक का सिर जुदा कर-दूसरे का कलेजा चीरती तीसरे की खोपडी पर बिजली सी जा गिरती थी। जब तक शत्रु सँभले तबतक सैकडों खेत रहे। एक तो शत्रु प्रात काल की इस अचानक चढ़ाई से योंही चकित

दस दस की कतार बाँधे सरपट घोड़ा दौड़ाए फौजी चाल में चले आ रहे हैं। निःशब्द रात्रि में सिवाय इनके घोड़ों की टाप के और कुछ शब्द सुनाई नहीं देता। सब के आगे इन सबों का नायक है जो बड़े शान से काली मुश्की घोड़ी को एड़ लगाए हाथ में भाला लिए चला आ रहा है। पेटी से कसी हुई कमर मे पिस्तौल, पीठ के पीछे बदूक और हाथ में भाला है तथा एक ओर पेटी से तलवार लटक रही है। चुस्त फौजी पोशाक इसके गठीले बदन पर बहुत ही अच्छी मालूम होती है। दिवाकर का प्रकाश न होने के कारण पोशाक का रंग तो प्रतीत नहीं होता पर हाँ सब लोगों की पोशाक भी सर्दार ही की तरह है, यह तो अवश्य लक्ष होता है। इसी ठाठ से यह नायक अपने एक हजार साथियों के साथ घोड़ा दौड़ाए चला आ रहा है। ये लोग कहाँ जा रहे हैं। आइए पाठक! यदि आप को देखना हो तो अपने मन रूपी तुरग को इनके संग दौड़ाइए और वीरों की वीरलीला देखिए। ये सवार घोड़ा दौड़ाते हुए बराबर चले जा रहे हैं। धीरे धीरे उषाकाल की सफेदी पूर्वाकाश में दिखाई देने लगी और दूर में एक नगर का शहरपनाह भी दिखने लगा। पक्षी मधुर स्वर से गायन कर रहे थे और प्रात काल की ठढी हवा पाकर घोड़े और भी जी खोल कर दौड़ने लगे और अच्छी तरह सबेरा होते होते शहरपनाह के फाटक पर पहुँच गए। फाटक पर पहुँचते ही कमर से रस्सी की सीढ़ियाँ निकाल कर तीन सिपाहियों ने दीवार पर फेंकी और भरी बंदूक हाथ में लिये वे सीढ़ियों से दीवार पर चढ गए। नगर का द्वार बंद

था। द्वार की बुर्जियों पर के सिपाहियों ने जो आँख मलते उठे थे इन लोगों की यह कार्रवाई देख कर एकबार ही इन तीनों पर गोली मारी। दो सिपाही गोली खा कर नीचे गिर गए और तीसरा यद्यपि घायल हो गया था पर भीतर जा कर वह दीवार से कूद पड़ा। अब तो डंका पिट गया और नगररक्षक को खबर मिलते ही बहुत से सिपाही फाटक की ओर दौड़े, पर जबतक ये लोग दौड़े तबतक भीतर जो सिपाही कूदा था उसने बड़ी फुर्ती से फाटक का हुड़का सरका दिया और खटका होते ही बाहर से सवारों ने एक बार ही ऐसा धक्का मारा कि फाटक चौचक खुल गया और सिक्ख योद्धा नगर के भीतर प्रविष्ट हो गए। नायक सब के आगे था। फाटक खोलनेवाला तो घोड़ों की टापों के नीचे कुचल कर कहाँ चला गया किसीने देखा भी नहीं, क्योंकि भीतर पहुँचते ही गोलियों की ऐसी बौछार से इन सवारों की अभ्यर्थना हुई कि अपने घायल साथी को बचाने का इन्हें मौका ही न मिला। अब तो दो तरफा सनासन गोलियाँ चलने लगीं और बहादुर सिपाही गिरने और आगे बढ़ने लगे। सिक्ख जवानों ने म्यान से तलवार निकाल ली और गोलियों की वर्षा को सावन भादों की झड़ी समझ कर और निधड़क आगे बढ़कर उन्होंने विपक्षियों को आड़े हाथ जा लिया। खालसा की तलवार रणचंडी वेष में नाचने लगी। एक का सिर जुदा कर—दूसरे का कलेजा चीरती तीसरे की खोपड़ी पर बिजली सी जा गिरती थी। जब तक शत्रु सँभले तबतक सैकड़ों खेत रहे। एक तो शत्रु प्रातःकाल की इस अचानक चढ़ाई से योंही चकित

आँख मलते उठ दौडे थे। दूसरे प्रबल खालसा की तलवार के आगे कब टिक सकते थे, जिसने जिधर मार्ग पाया भागने लगा। थोडी ही देर में मैदान साफ हो गया, सिवा दो तीन सौ लाशो के और कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं होता था। अब तो सिक्ख सवार नगर मे धँस पडे और उन्होंने मनमानी खूब लूट मचाई। लूट पाट कर एक बडे भारी खाली मकान में जो इस नगर के हाकिम पीर मुहम्मद खा का था, सवा ने डेरा डाला। पाठको! आपने पहिचाना कि ये सिक्ख सवार कौन हैं? ये लोग सुकरचकिया मिसल के जवान है और इनका सर्दार, माहा सिंह, सर्दार चरतसिंह का पुत्र है जिसने आज सवेरे रसूलनगर नाम के शहर पर छापा मारा है और यहा के हाकिम पीर मुहम्मद खा को मार भगाया है। दोपहर ढल चुकी है। सब बाहर धूप मे बैठे हुए हैं। सर्दार माहा सिंह अपने सिपाहियो से इधर उधर की बातचीत कर रहे हैं, इसी बीच में दूर से सफेद घोडे का एक सवार दौडता हुआ आता दिखाई दिया। उसने निकट आ कर "जै श्री वाह गुरु" उचार कर सर्दार का अभिवादन किया और कहा—"आपके लिये शुभ सवाद लाया हू। कल के रोज १९ घडी तेरह पल दिन चढने पर आप के यहा पुत्ररत्न पैदा हुआ है, अर्थात् सवत १८३७ विक्रमी अगहन बदी २ भौमवार के दिन तीन बजे के लगभग झींद के राजा गजपत सिंह की कन्या आपकी बड़ी रानी के गर्भ से पुत्ररत्न ने जन्म ग्रहण किया है।" इस सवाद के सुनते ही सर्दार माहा सिंह बहुत प्रसन्न हुआ। तुरत ही उसने कडाह प्रसाद करवा

कर अरदास पढ़वाई और सब सिपाहियों का मुँह मीठा करवाया तथा सब वीरों को इकट्ठा कर सबोधन कर कहा–"भाइयो इस अवसर पर जब कि हम लोगों ने तत्कालही एक युद्ध मे फतह पाई है, एक भाग्यवान् और प्रतापी पुत्र होने का शुभ सवाद सुनाई दिया है इस लिये इस पुत्र का नाम मैं "रणजीत सिंह' रखता हूँ जिसमें रण मे यह सदा जीतता ही रहे और शत्रुओ का मान मर्दन करता रहे।" सब साथियों ने एक स्वर मे "जै श्री वाह गुरु की फतह" कह कर इसका अनुमोदन किया। वास्तव मे पिता का यह नाम रखना सार्थक हुआ। यह प्रतापी पुत्र कभी भी युद्ध में किसी से नहा हारा। जैसे इसका नाम रणजीत सिंह था वैसे ही प्रत्येक रण मे जीत इसी की रही और सिंह के तुल्य निर्भय होकर यह पजाब पर शासन करता हुआ, प्रबल बृटिश सिंह द्वारा भी 'पजाव-केशरी,' पजाब का शेर (Lion of the Punjab) इस नाम से पुकारा गया। पिता की भविष्यत् वाणी ऐसी ही और एक अवसर पर सफल हुई थी। जब प्रतापी अकबर ने अमरकोट के एक निर्जन स्थान मे पेड़ तले जन्म ग्रहण किया था तो उसके पिता के पास कुछ न था कि इस आनद के अवसर पर अपने साथियो को भेंट करता। केवल कस्तूरी का एक नाफा था। इसीको काट कर उसने थोड़ी थोड़ी कस्तूरी अपने साथियों को बाँटते हुए कहा था कि "जैसे कस्तूरी की सुगधि फैल रही है, वैसे ही मेरे लड़के का यश सौरभ फैले"। जैसे हुमायू की यह भविष्येच्छा ज्यों की त्यों सच हुई और शाहशाह अकबर का नाम यश और प्रताप सर्वत्र फैला, वैसे ही महाराज रणजीत सिंह भी

कभी किसी शत्रु से नहीं हारे और अपने 'रणजीत' नाम को सार्थक कर गए।

पहले कह आए हैं कि सर्दार माहा सिंह का वली सर्दार जयसिंह, घुन्निया अर्थात कन्हैया मिसलवाले का सर्दार था तथा बालकपन में वह माहासिंह की देख रेख रखता था और इसके साथ मिल कर माहासिंह ने कई मुहारिब भी फतह किए थे। यह लूट पाट में से बराबर अपना भाग लेता था। 'रणजीत' के जन्म ग्रहण के बाद माहा सिंह ने अपने स्थान गुजराँवाला में आकर पुत्र के मुखका दर्शन किया और थोड़े दिन ठहर कर फिर अपने जवानों को ले कर वह नगर जम्मू पर चढ़ धाया। जम्मू में घुस कर माहा सिंह ने मनमानी लूट मचाई और बहुत सा धन रत्न लूट कर इस जीत की खुशी में वह अमृतसर दर्बार साहब के दर्शनों को गया। अमृतसर आने पर सर्दार जय सिंह कन्हैया ने लूट के माल में से अपना हिस्सा माँगा। इस चढ़ाई में कन्हैया लोग शामिल नहीं थे, इसलिये माहा सिंह ने एक पाई भी देना अस्वीकार किया। इससे कन्हैया सर्दार बिगड़ उठा और दोनों दल वालों में तलवार चल गई। सर्दार माहा सिंह की जय हुई और जय सिंह भाग कर काँगड़े के राजा संसारचन्द के पास चला गया। अब तो माहा सिंह से कांगड़े के राजा संसारचंद से भी विरोध हुआ, पर युद्ध की नौबत न आई। बीच ही में संधि हो गई, और लौटते हुए माहा सिंह ने फिर से एक बार जम्मू पर सफाई का हाथ फेरा तथा धन रत्न के अलावा अबकी बार कई तोपें भी लूट लीं। इस चढ़ाई में चार वर्ष का

बालक रणजीत भी पिता के संग था। युद्ध-क्षेत्र और लड़ाई भिड़ाई की उसे यों ही स्वाभाविक शिक्षा मिल रही थी। लड़ाई के मैदान में जब चारों ओर से सचासच तलवारें चल रही थीं, बालक रणजीत अलग, घोड़े पर सवार हो निडर यह कौतुक देख रहा था। यह मुहासरा फतह करके महासिंह बड़ी खुशी खुशी घर लौटा, पर थोड़े ही दिनों में यह खुशी दुःख में बदल गई। संसार की गति ही ऐसी है "चक्रवत् परिवर्तते दुःखानि च सुखानि च।" जब अधिक सुख हुआ तो दुःख का प्रारंभ समझिए। अस्तु, घर आकर अभी खुशी का खुमार अच्छी तरह उतरा भी नहीं था कि महासिंह के प्यारे पुत्र को प्रबल रोग ने आ घेरा, रोग भी साधारण न था बड़े भयानक रूप से वसंत रोग हो गया, माता निकल आई। दिन दिन रोग बढ़ने लगा। यातना से बालक कातर हो कर क्रन्दन करता था। सारा अंग बड़े बड़े दानों से भर गया। रात दिन माता-पिता चिंता और दुःख में बिताते थे। पिता ने बहुत सा दान पुण्य किया तथा ग्रहशांति के अर्थ कई ब्राह्मणों से अनुष्ठान बैठा दिया। नित्य जप, और योग याग होने लगा। सहस्रों कँगलों को कड़ाह प्रसाद बँटने लगा। प्रति दिन 'रण-जीत' की आरोग्यकामना से कड़ाह प्रसाद कर अरदास पढ़ी जाती और भूखों को तरातर हलुवा भोजन कराया जाता। इधर देव देवी सभी मनाए जाते थे। अस्तु, जिनका कभी एक-लौता पुत्र ऐसे प्राण-संकट में पड़ा हो, वे ही इस समय को जान सकते हैं। बीमारी भी बड़ी प्रबल थी। बालक रणजीत दिन रात पीड़ा से छटपटाया करता था। अंत को अकाल पुरुष

ने माता पिता की प्रार्थना सुन ली और रणजीत की पीड़ा दिन पर दिन कम होने लगी। इक्कीसवें दिन बालक के प्राण सब सूरत गए। पर इस वक्त रोग ने सुंदर बालक को बहुत ही कुरूप बना दिया। मुँह पर चेचक के बड़े बड़े दाग हो गए और एक आँख भी जाती रही। बचपन ही से रणजीत काना हो गया, पर खैर हुई कि जान बच गई। बालक के आरोग्य स्नान करने पर पिता ने बड़ा आनंद मनाया और महन्त ब्राह्मणों और मँगतों को भोजन करा दान दक्षिणा दी तथा सिपाहियों को खिलत बाँटी। माता ने भी सब को पुरस्कृत किया और आनंद बधावा बजा। अब संकट के दिन टल गए तो खुशी की घड़ी आई। सर्दार जयसिंह कन्हैया ने जब देखा कि माहासिंह का बल बढ़ता जा रहा है तो बालक रणजीत से उसने अपनी पोती के विवाह की बात ठहरा ली, जिससे माहासिंह का क्रोध शांत हो गया और सर्दार जयसिंह से पहले की तरह मित्रता हो गई। इधर जब एक मिसल से मित्रता हुई तो दूसरी एक मिसल के सर्दार जस्सासिंह राम-गढ़िया से वैर ठन गया। उसने सुकरचकियों पर चढ़ाई कर दी थी, पर माहासिंह की तेज तलवार ने उसे भी नीचा दिखाया। संवत १८४७ विक्रमी में माहासिंह का बहनोई भंगी सर्दार गुर्जरसिंह मर गया। उसके मरने के बाद उसके पुत्र सर्दार साहबसिंह ने लाहौर पर चढ़ाई करने की तैयारी की और अपनी सहायता के लिये अपने मामा सर्दार माहा-सिंह, रणजीत के पिता, को भी बुलाया। पर माहासिंह थोड़ी दूर जा कर सख्त बीमार हो गया और रास्ते ही से घर लौट

आया पर उसने अपने प्यारे पुत्र रणजीत को जिसकी उम्र इस समय केवल बारह वर्ष की थी सर्दार दिलसिंह की निगहबानी में अपनी सेना के साथ लाहौर की ओर भेज दिया। उधर जस्सासिंह रामगढिया जो कि माहासिंह से हार कर वैर भूला नही था, माहासिंह की बीमारी का समाचार सुन कर उसके इलाके पर चढ आया। यह सवाद बालक रणजीत को रास्ते ही में एक सवार ने आकर सुनाया। इस सवाद के सुनते ही रणजीत ने लाहौर का जाना छोड कर घोडे की बाग मोडी और मार्ग ही मे जस्सासिंह रामगढिया को जा रोका। यद्यपि रणजीत की उम्र इस समय केवल बारह वर्ष की थी जब कि हमारे लडके अच्छी तरह धोती बाँधना भी नही जानते, पर उसने बडी वीरता दिखाई। बराबर अपने घोडे पर डटा हुआ वह तलवार चला रहा था। भय किस चिडिया का नाम है यह जानता ही न था। ऐसे ही ऐसे लोग स्वतत्र राज्य स्थापन करनेवाले होते हैं। अस्तु, इस लडाई मे अपने बालक सर्दार रणजीत के दृष्टात से दूने जोश में आकर सुकरचकियों ने तलवार के जौहर दिखलाए और प्रवीण सर्दार जस्सासिंह रामगढिया को बालक रणजीत से हार खा दुम दबाकर भाग जाना पडा। अब तो चारो ओर से बालक रणजीत को लोग 'धन्य धन्य' कहने लगे जिससे उसका उत्साह खूब बढा। इस विपद को दूर कर रणजीत लाहौर जाने की तैयारी में था कि सहसा पिता माहासिंह की शोकजनक मृत्यु का सवाद आ पहुँचा। अस्तु, विवश हो उसे घर लौट जाना पड़ा। घर आकर उसने पिता की यथावत् दाहक्रिया की और श्राद्ध इत्यादि

कर इलाके का काम सँभाला। पिता की मृत्यु के बाद ही से यह सारे इलाके का काम स्वयम् देखने सुनने लगा। सब कामों में जानकार होने और काम के ठीक उतारने का ढंग सोचने और बतलाने में इसका बड़ा उत्साह था। पर नितांत बालक होने के कारण इसकी कुछ चलती नहीं थी। लोग इसके सामने तो 'हाँ जी, हाँ जी' कर देते थे पर पीछे से राज्य का प्रबंधकर्ता रूपपतराय नाम का एक खत्री जो आज्ञा प्रचार करता वही मानी जाती थी। इस रूपपतराय को रणजीत की माता भी बहुत मानती थी और रणजीत की माता और रूपपतराय, इन्हीं दोनों की सलाह से सब प्रबंध होते थे। रणजीत की कुछ नहीं चलती थी। वह जो आज्ञा देता, रूपपतराय की आज्ञा से उसके अनुसार कार्रवाई कभी भी नहीं होती थी। माता भी रणजीत को यही समझाया करती कि "अभी तुम बालक हो राजकाज के टेढ़े मामलों को नहीं समझ सकते, इसलिये प्रवीण रूपपतराय के आज्ञानुसार चलना ही ठीक होगा।" वह यही कह कर पुत्र को दबाए रखती और १०) रु० प्रति दिन जेबखर्च के लिये उसको देती। पर अग्नि राख में नहीं छिप सकती है। जिस पौधे को बढ़ कर कालांतर में प्रकांड वृक्ष का रूप धारण करना है और सैकड़ों वृक्षों को अपनी छाया में रखना है वह क्या तनिक सी बाधा से अपने बढ़ाव को रोक सकता है। 'होनहार बिरवान के, होत चीकने पात।' साधारण अवस्था से ऊँची पदवी को जितने लोग पहुँचे हैं उनमें प्रायः आत्मविश्वास अधिक होता है और किसीके दबाव में रहना उनके लिये कठिन हो

जाता है। ये लोग बचपन में प्राय जिद्दी भी होते हैं। जो बात पकडते हैं जल्दी छोडते नहीं। ससार मे महान् पुरुषों का यह एक लक्षण है। अस्तु, अपनी माता और दीवान लखपतराय का दबाव उसे बहुत अखरता था और अपनी भावी उन्नति के लिये जिस मार्ग का वह अवलम्बन करता उसमे पैर पैर पर बाधा पडने से अपनी माता और लखपतराय के प्रति वह मन ही मन बेतरह चिढ भी गया था और मौका पाकर उसने इस दबाव से अत को अपना सिर निकाल ही लिया जिसका वर्णन आगे के अध्याय में आवेगा।

तीसरा अध्याय।

रणजीत का अभ्युदय।

रात्रि का समय है। रात आधी से अधिक बीत चुकी है। ऐसे समय में एक कमरे मे धीमी रोशनी से एक मोमबत्ती की कंदील जल रही है। कमरे की सजावट मामूली है। सामने दीवार पर एक बड़ा सा चित्र "गुरु नानक देव जी" का टँगा हुआ है जिसमे वह हाथ मे मोतियो की सुमरनी लिए जप में मग्न हैं और कमरे की दीवारो पर चारो ओर बाकी नवो खालसा गुरुओ के भी चित्र टँगे हैं। एक तरफ एक चौकी पर गद्दी लगी हुई है, जिस पर एक परम तेजस्वी रमणी बैठी हुई है। सिवाय श्वेताबर के इस रमणी के अग पर कोई भूषण या आभरण नहीं है, पर चहरे पर की काति ने अड-तालीस वर्ष की उम्र मे भी इस तेजस्विनी विधवा को षोडश वर्षीया युवतियो से भी आधिक सौंदर्य्यशालिनी बना रखा है। सामने कुर्सी पर एक सत्रह वर्ष का किशोरवय युवा बैठा है जिसकी चुस्त पोशाक, गठीला वदन और कमर में लटकती हुई लबी तलवार, एक वीर और उत्साही मनचले, उच्चा-भिलाषी युवक का चित्र आँखो के सामने ला देती है। यह युवक एक आँख से जो बहुत बड़ी और तेजपूर्ण है उस प्रौढ़ा रमणी की ओर देखता हुआ बड़े ध्यान से उसकी बातें सुन रहा है। एक आँख से देखना इस लिये कहा कि इस किशोरवय युवक की दूसरी आँख अंधी है, पर अच्छी आँख

की तेजी ने दूसरी कानी आँख की सारी कसर निकाल दी है। अब तो पाठक समझ ही गए होंगे कि यह हमारे चरित्र-नायक सुकरचकिया मिसल के वर्तमान नवयुवक सर्दार रणजीत सिंह हैं। वह रमणी कौन है जो बड़े शान से सामने गद्दी पर बैठी है? यह कन्हैया सर्दार जयसिंह की पुत्रवधू, सर्दार गुरु बख्शसिंह की विधवा, बीबी सदाकुँवर, रणजीत की सास है। सर्दार गुरु बख्शसिंह, रणजीत के ससुर की मृत्यु के बाद यही कन्हैया मिसल की एक मात्र सर्दारिन थी और राजनीति छलबल तथा जमाने के ऊँच नीच को खूब समझती थी। अपने मिसल को तो अपनी बुद्धिमत्ता से उँगलियों पर नचाती ही थी, पर इधर सुकरचकियो पर भी अपने दामाद नवयुवक रणजीत द्वारा उसने अपना प्रभाव डालना प्रारभ कर दिया था। यह रमणी बडी चतुर और नीतिकुशल थी। अब उसकी आतरिक इच्छा यही थी कि कन्हैया और सुकरचकिया दोनों मिसलवाले मिल कर और सारे मिसलों को दबा कर प्रभूत बलशाली हो और मेरी उँगली के इशारे पर नाचते रहे। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये उसने अपने दामाद रणजीत को अपने घर न्यौता देकर बुलाया है और अर्ध रात्रि तक इधर उधर की बातों मे लगा कर अब असल मतलब की बात छेडी है। बात तो दोनो में पजाबी भाषा में होती थी, पर हम यहाँ पाठको के सुभीते के लिये उसका अनुवाद हिंदी मे लिखते हैं—

सदाकुँवर—अच्छा तो दिवान लखपत तुम्हारी कुछ नहीं सुनता?

रणजीत—बिलकुल नहीं, जो काम मैं करूंगा उसको उलट देना ही उसका एक मात्र कर्तव्य हो रहा है।

सदाकुँवर—सर्दार जी (अर्थात माहासिह) के परलोक वास होने के बाद से उसने कुछ नए इलाके अधिकार किए हैं ?

रणजीत—एक भी नहीं, हाँ मैंने जब नए इलाकों को अधिकार मे करने की चेष्टा की तो उसने रुकावटें अवश्य डाली है।

सदाकुँवर—आखिर इसका कारण क्या बतलाता है ?

रणजीत—कहता है कि अभी तुम बालक हो, अभी से जोखिम म अधिक सिर देना ठीक नहीं।

सदाकुँवर—जोखिम मे सिर देने से डरते तो क्या आज दिन तुम्हारे बाप दादा इतनी जायदाद पैदा कर सकते थे, जिसके बल पर तुम चैन कर रहे हो।

रणजीत—यही तो मैं भी सोचता हूँ।

सदाकुँवर—और भी एक बात है। तुम्हारे फूफा गुर्जर सिंह के दलवाले (अर्थात् भगी सर्दार) क्या तुम समझते हो कि चुपचाप बैठे हैं ? क्या वे पुराना अपमान भूल गए हैं ? वे लोग हरदम इसी फिराक में लगे रहते हैं कि कब सुकरचकिया को ढीला पावें और पुराना बैर लें।

रणजीत—हाँ ! ऐसी बात है ! तब तो उनकी खबर लेनी ही होगी।

सदाकुँवर—धीरे धीरे, उतावले मत हो। अभी और भी कई आवश्यक बातें हैं। यह भी तो तुम्हे मालूम है कि तुम्हारे ससुर के मरने का प्रधान कारण कौन है ?

रणजीत—यह तो मैं ठीक नहीं जानता।

सदाकुँवर—आश्चर्य्य है। संसार जानता है कि जस्सासिंह रामगढ़िया यदि घटाले की लड़ाई में विपक्षियों का साथ न देता तो मुझे आज ये दिन (अपने ककणविहीन हाथों की ओर इशारा करके) न देखने पड़ते।

रणजीत—ठीक है। जस्सासिंह ने उस अवसर पर बड़ी दुष्टता की।

सदाकुँवर—फिर क्या योंही चुपचाप बैठे रहोगे?

रणजीत—मेरे तो हाथ खुजला रहे हैं, पर क्या करूं, इस पाजी लखपत के मारे कुछ करते नहीं बनता। माता जी भी उसीकी 'हाँ' में 'हाँ' मिलाती हैं।

सदाकुँवर—निराले में बैठ कर तुम्हारी माता से लखपत घंटों सलाह मशविरा भी तो किया करता है।

रणजीत—हाँ, इलाके के इंतजाम की जरूरी बात करता है।

सदाकुँवर—चाहे जो हो, पर एक परपुरुष का विधवा के पास अकेले में घंटों बैठना, दुनिया की जबान तो नहीं रोक सकता।

रणजीत—बस, अब कुछ मत कहो। पाजी लखपत तो मेरी आँखों का शूल हो गया है और माता जी को भी क्या कहूँ—कुछ कहते नहीं बनता। (यह कह कर रणजीत दाँत पीसने लगा।)

सदाकुँवर—धीरे धीरे, उतावली से सब काम बिगड़ जायगा। इन बातों को पी जाओ। किसी पर भूल कर प्रगट

न करना, नहीं तो खड़गपत तुम्हारे प्राणों का गाहक हो जायगा और अपनी माता का भी अधिक भरोसा मत रखना।

रणजीत—जो कहो। मैं तो तुम्हीं को अपना एकमात्र हितू समझता हूँ।

सदाकुँवर—पहले तो रामगढियोंवाला मामला तय करना चाहिए। मुझे ठीक पता लगा है कि आज कल जस्सा सिंह व्यास के किनारे अपने किले मियानी में है और उसकी बहुत सी सेना बाहर लूटपाट करने गई हुई है। यही मौका कार्य्य साधन का है। इस मौके पर कन्हैया और सुकरचकिया दोनों मिसलों की सेना मिल कर जस्सासिंह का काम तमाम करे, फिर भंगियों से भी समझा जायगा। ढीले पड़े कि शत्रुओं ने जोर पकड़ा। खाली कभी मत बैठो।

रणजीत—अच्छा उस पाजी (अर्थात् खड़गपत) का क्या इंतजाम होगा ?

सदाकुँवर—खुल्लमखुल्ला कोई वारदात करने से तुम्हारी बदनामी हो जायगी और तुम्हारी मा भी तुम से बेतरह चिढ़ जायगी। इस लिये मौका पा कर उसे किसी ऐसे शत्रु के विरुद्ध भेज दो कि फिर कर न आवे और यदि फिर कर आवे तो रास्ते ही में (बहुत धीमी आवाज करके) किसीसे खपवा देना।

रणजीत—बात तो तुमने मेरे मन की कही। अच्छा एक खबर यह भी सुनते हैं कि काबुल का शाह जमान आजकल में आया चाहता है।

सदाकुँवर—इस समय कुछ दिन के लिये चुपचाप बैठे

रहो, जब शाह जमान पीठ मोड़ेगा तब हम लोगों की कार्रवाई का मौका आवेगा। पर देखो, फिर भी कहे देती हूँ कि दीवान (लखपत से तात्पर्य्य था) से खूब होशियार रहना। अब जाओ बहुत रात हो गई है, सोओ। कल तुम्हारी दावत भी तो करनी है।

रणजीत और उसकी सास की इस गुप्त बातचीत से पाठकों को भली भाँति पता लग गया होगा कि यह रमणी कैसी चतुर और नीतिकुशल थी और किशोरवय रणजीत पर उसका कहाँ तक प्रभाव था, तथा रणजीत के स्वभाव की भी कुछ कुछ झलक आप लोगों को दिख गई होगी। अस्तु। ससुरार का आतिथ्य उपभोग कर रणजीत अपने घर वापस आया और कुछ ही दिन बाद काबुल के अमीर शाह जमान खाँ ने सवत् १८५३ विक्रमी में पजाब मे पदार्पण किया। अब तो सारे सिक्ख मिसलवाले, जो अब तक लूटपाट के भरोसे पजाब भर पर सिक्का जमाए हुए थे इधर उधर जा छिपे। प्रतापी अहमदशाह दुर्रानी के इस प्रबल वशधर से सामना करने की किसी की भी हिम्मत न हुई और बहुत से तो अपना इलाका छोड छोड़ कर पहाड और जगलो म जा छिपे। अस्तु, शाह जमान बेखटके लाहौर तक बढता चला आया। पर अभी उसने लाहौर में पैर रक्खा ही था कि काबुल से कुछ अतर विरोध के समाचार आए और उसे उलटे पैर लौट जाना पडा, पर लौटते हुए अपने एक नामी सर्दार शानीखाँ को बहुत से पठानों के साथ लाहौर ही में यह आज्ञा दे कर वह छोड़ गया कि "सिक्खों के बल को तितर बितर करके काबुल

रियाई करने का

आना।" स्वामी की आज्ञा के अनुकूल का वहाँ से मिलकर
इच्छा से शानीखाँ ने गुजरात पर चढाई कर रणजीत के इलाके
को बेदखल कर के भगा दिया और फिर भाग कर बैठा रहा
रामनगर पर चढाई की। रणजीत किला रात में बाहर
और भीतर से गोले वरसाता रहा, तथा अँध। इस लडाई में
निकल कर भी शत्रु पर छापा मारा करता ने अन्य मिस्ल
व्यर्थ समय गँवाना अनुचित समझ शानी खाँ रने के लिये पुन
मिसलों के इलाको को बिलकुल नष्टभ्रष्ट क अवसर पा पीछे से
गुजरात की ओर मुँह मोडा। रणजीत ने आ घेरा। अब तो
चढाई कर दी। सामने से भगी सर्दारों ने अ घबडा उठी और
दो तरफा तोपो की मार से शानी की सेना। रणजीत ने
जिधर जिसने चाहा प्राण ले कर भागने लगा एक ही गोली में
घोडा दौडा कर शानीखाँ को जा पकडा और झाडो में जा छिप
उसका काम तमाम कर दिया। सिक्ख जो प आपस की मार
थे फिर अपने अपने इलाकों पर आ डटे और साह से भरा हुआ
पट के गुप्त षड्यन्त्र चलने लगे। नवीन उ। जब बाहरी
सिक्ख जाति के लिये खाली बैठना कठिन था ट किया करते थे
शत्रु नहीं रहता था तो वे आपस ही में मारकाट का अच्छा
जिसमें इनके तेजस्वी स्वभाव और फुर्तीले की निशानी है।
आभास मिलता है। सुस्त बैठना ही मौत रणजीत ने शानी
अस्तु इन लोगों में फिर खटपट होने लगी। इससे उसका
खाँ को मारा और पठानों को मार भगाया उठते हुए नव
नाम वहुत फैल गया। सारे मिसलवाले इस देखने लगे और
युवक की ओर सदेह और आतक की दृष्टि से

मनों की अपनी अपनी पड़ गई। अत को वर्तमान मे रणजीत को नष्ट करने का और कोई अवसर न देख कर इन लोगों ने हिम्मत खाँ नाम के एक पठान जागीरदार को जिसका इलाका चनाव के किनारे था रणजीत के विरुद्ध उभाड़ा और उसे यह पट्टी पढ़ाई कि मौका पा कर यदि उसे मार डालोगे तो उसका बहुत सा इलाका तुम्हारे हाथ आ जायगा। अस्तु, यह शैतान अवसर देखता रहा और जब एक दिन शिकार खेल कर रणजीत अकेला जगल की राह से लौट रहा था तो इसने पीछे से आ कर तलवार चला दी। रणजीत का घोड़ा कुछ तेजी से जा रहा था इस लिये घातक का निशाना चूक गया और तलवार छटक कर घोडे की काठी पर जा लगी। रणजीत ने तत्काल ही पीछे मुड कर देखा और एक आन मे सारा भेद समझते ही लपक कर वह हाथ मारा की हिम्मत खाँ का सिर भुट्टा सा कट कर भूमि पर लोटता दिखाई दिया। खाँ जी गए थे गाजी होने उलटे शहीद हो गए। अस्तु, इस अवसर पर 'अकाल पुरुष' ही ने रणजीत की रक्षा की। "जाको राखै साइयाँ, मार न सकै कोय। बाल न बाँका कर सकै जो जग वैरी होय।" यह एक पुरानी कहावत है। जिसने ऐसी कठिन बीमारी के समय रणजीत के प्राण बचाए उसीने गुप्त हत्यारे से भी इसकी रक्षा की। जो जो प्रसिद्ध पुरुष हो गए हैं और जिनका सबध देश की राज्यव्यवस्था से रहा है, उन्हे प्राय ऐसा अवसर आया है और गुप्त घातकों ने बीच ही में हत्या कर कटक दूर कर देना चाहा है, पर विचित्रता तो यह है कि इन घातकों की मनसा कभी भी पूरी नहीं हुई है और ऐसे लोग

तनिक से वाल के अतर से बचते रहे हैं। सिकदर, नेपोलियन, शिवाजी सभी को ऐसा अवमर आया है, पर परमात्मा को तो इनके द्वारा बहुत कुछ खेल दिखाना था, वह इन्हें बीच ही में क्यों कर समाप्त कर देता। अस्तु रणजीत भी इसी कोटि में प्रविष्ट किया जा सकता है। खैर, जो हो, यह अवसर उल्टा रणजीत को लाभदायक हुआ, क्योंकि हिम्मत खाँ का काम तमाम कर वह खडे पैर उसके इलाके पर चढ गया और एक माधारण युद्ध के वाद उसका सारा इलाका इसके अधिकार में आ गया। माथ ही राह के और भी दो एक मियाँ जागीरदारा को उसने अपनी तलवार का मजा चखाया और उनसे कुछ रुपया ले कर तथा अपनी प्रभुता स्वीकार करवा कर तब पिंड छोडा। घटो घोडे पर सवार रह कर सौ सौ मील तक सफर करना और एकाएक बेखवर शत्रु पर टूट पडना नवयुवक रणजीत के लिये माधारण वात थी। यो तो पजाब का वायु मडल ही सिक्खो के लिये उन दिनों उत्साह और वीरता की उमग की लहरो से भरा था, तिस पर रणजीत के दादा चरतसिंह पिता माहासिह आदि ने जन्म से लडाई भिडाई, मारकाट के सिवाय दूसरा सबक सीखा ही न था, तीसरे रणजीत के जन्म का सवाद पिता को युद्धक्षेत्र ही में मिला और बचपन से यह भी उसी वायुमडल में पला था। यह जब निरा वालक ही था तलवार चलाना सीख चुका था, वारह वर्ष की ही अवस्था में यह युद्ध भी कर चुका था सो उसके लिये 'रणभूमि में तलवार नचाने का उमग' न होना ही आश्चर्य्य की वात कही जा सकती है, होना तो साधारण वात है। विधाता ने उसे ऐसे ही घर में ऐसे ही

समय मे और ऐसी ही योग्यता देकर ससार में भेजा था जिससे ये सब काम आहार विहार की तरह उसकी नित्य की प्रक्रिया मे शामिल हो गए थे। आज अमुक का इलाका लूट लेना, कल अमुक का सिर काट लेना, परसों और किसीसे जा लोहा बजाना यह तो रणजीत की नित्य की दिनचर्य्या हो रही थी। अस्तु, जब काबुल के सेनापति शानी खाँ को मार और हिम्मत खाँ का इलाका छीन कर रणजीत घर वापस आया तो उसकी सास सदाकुँवर ने अपनी नात चीत की याद दिलाई और रणजीत तत्काल ही कमर कस कर कन्हैया और सुकरचकिया दोनों मिसलों की सेना के साथ अपनी सास के शत्रु सर्दार जस्सासिंह रामगढिया के किले मियानी पर चढ गया। यह किला व्यास नदी के तीर था। जस्सासिंह किला बद कर भीतर से लडता रहा और बाहर रणजीत और उसकी सास की सेनाएँ दोनों घेरा डाले पडी थीं और किला तोडने की चेष्टा कर रही थीं। कुछ दिन तक लडने के बाद जस्सासिंह की रसद चुक गई और उसने अमृतसर दर्बार साहब के मुख्य अधिष्ठाता, गुरु नानक जी के वशधर बाबा साहबसिंह वेदी को लिख भेजा कि आप बीबी सदाकुँवर को समझा कर मेरी जान बचावें। बाबा साहब ने सदाकुँवर को किले का घेरा उठा लेने को कहलाया पर उसने शत्रु को अधिकार मे आया जान बाबाजी का कहना नहीं माना और किले पर गोलदाजी जारी रक्खी। अब की फिर गिड़गिड़ा कर जस्सासिंह ने बाबा साहब के पास आदमी भेजा, पर बाबाजी ने कहा कि—"भाई मैं क्या करूँ, मेरी तो

ये लोग कुछ सुनते ही नहीं, अकाल पुरुष आप ही तुम्हारी सहायता करेंगे।" और वास्तव में हुआ भी ऐसा ही। उसी रात व्यास नदी में ऐसी बाढ़ आई कि रणजीत और सदा कुँवर की सेना सब घोड़े ऊँट और तोप बदूक सब सामान के जल में बहने लगी। सदा कुँवर अपने प्यारे दामाद रणजीत के साथ बड़ी कठिनता से बच कर गुजराँवाला आ गयी। इस चढ़ाई से इन लोगों की बहुत हानि हुई। जस्सासिंह के यहाँ तो अरदास पढ़ी गई और हलुवा बँटा। इस चढ़ाई से वापस आने पर रणजीत की बुद्धि भी कुछ कुछ खिल चली और इस प्रकार से अपनी सास या माता के हाथ का खिलौना बने रहना उसे हेच जँचने लगा।

पहले तो उसने दीवान लखपत को ठिकाने लगाने का इतजाम किया क्योंकि इन दिनों रणजीत खुल्लमखुल्ला स्वतत्र रूप से सब काम करने और अपनी रियासत के इतजाम में दखल देने लग गया था जिसके कारण लखपत से अनबन बहुत अधिक बढ़ गई थी, उधर चतुर सास सदाकुँवर की चितावनी भी उसको हर घड़ी याद आती थी। अस्तु रणजीत ने दीवान लखपतराय को किसी बहाने से कैथल की ओर भेज दिया और इलाके देहनी में पहुँचते ही गुप्त प्रबध के अनुसार घातक ने उसे यमलोक का मार्ग दिखाया। दीवान लखपत के मरते ही रणजीत की माता भी गायब हो गई। रणजीत ने उसे हरिद्वार स्नान कराने के बहाने से ले जाकर एक किले में कैद कर दिया, जहाँ थोड़े दिन बाद स्वभावत ही वह परलोक सिधार गई। अपनी माता और लखपत से तो उसे छुट्टी मिल गई,

पर अपनी सास चतुरा सदाकुँवर, से छुट्टी मिलना जरा टेढी खीर था। यद्यपि रणजीत चित्त से इस स्त्री की आज्ञा मे चलना नहीं चाहता था, पर वह उसे ऐसे पेंच मे लाकर डाल देती थी कि विवश हो रणजीत को उसकी बात माननी ही पडती थी। यद्यपि सदाकुँवर की कन्या रणजीत की स्त्री थी, पर यह चतुरा रमणी रणजीत को अन्य सुन्दरी स्त्रियों से उचित या अनुचित सबंध करने से कभी नहीं रोकती थी और कई अवसरो पर तो परोक्ष रूप मे इस काम मे रणजीत की सहायक भी होती रही जिससे रणजीत की कोई न कोई गुप्त बात हरदम उसके कब्जे मे रहे और उसे यो आचारभ्रष्ट और आत्मबल मे हीन कर वह उसकी इस निर्बलता से लाभ उठाती रहे, यही उसकी आतरिक इच्छा थी। रणजीत क्या करता ? "यौवन धनसम्पति प्रभुत्वमविवेकता, एकैकमप्यिनर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम।" पर खैरियत इतनी ही थी कि रणजीत बिलकुल ही अविवेकी न था। ईश्वर की कृपा से कुछ समझ रखता था और यद्यपि उठती जवानी में धन सपति और प्रभुत्व पाकर उसका चारित्र कुछ हीन रहा हो और ऋषि मुनियो से अजेय 'मार' की मार से वह परास्त होकर कुछ आचारभ्रष्टता के कार्य्य भी कर गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। तात्पर्य्य यह कि यहीं से रणजीत को अधिक मद्य पीने और स्त्री-सग करने की आदत लग गई थी, जो बुढौती तक भी नहीं छूट सकी।

यह सब कुछ था पर राजकाज के इतजाम और राजनीति के गुलबल की शिक्षा भी उसे चतुरा सदाकुँवर से प्रत्यक्ष और

परोक्ष दोनों रूप से मिल रही थी और वह इस विषय में बड़ी सूक्ष्म बुद्धि से विचार करता और अपनी कार्यवाई के आगे के परिणाम को बड़ी बारीकी से सोच समझ कर कार्य स्थिर करता था। यद्यपि उसे वर्णों से परिचय नहीं था, उसने कभी कोई पुस्तक नहीं पढ़ी थी पर अनुभव और परिश्रम की पाठशाला में उसने वास्तविक शिक्षा पाई थी। शिवाजी की तरह उसे अपना नाम लिखना नहीं आता था तो क्या, राष्ट्र परिचालन की बुद्धि तो उनमें थी। इसमें यह सिद्ध होता है कि केवल स्कूली विद्या ही विद्या नहीं है। वास्तविक विद्या तो वही है जो वास्तव में समय पर काम दे सके। आजकल सब के सिर पर स्कूली विद्या का भूत सवार है, वास्तविक शिक्षा की ओर किसी का ध्यान ही नहीं है। तात्पर्य यह है कि स्वय अनुभव और प्रकृति के गुणों की स्वाभाविक जाँच जिसे अंग्रेजी में हम "Devine curiosity to know" (जानने की दैवी उत्कट अभिलाषा) कहेंगे, यह भी एक शिक्षा है और यदि उपयुक्त गुरु मिले तो इसी प्राकृतिक स्कूल में वह उसे पूरे तन्ने डिगरी का ग्रेजुएट बना सकती है। अस्तु, रणजीत यद्यपि युवावस्था की बुराइयों में शराबोर हो रहा था, पर अपने कर्तव्य राजकाज से अनजान न था क्योंकि इसकी शिक्षा उसके नस नस में रक्तद्वारा प्रवाहित थी और उसे उमंग और उत्साहरूपी ऊष्णता पहुँचाया करती थी। यही कारण था कि वह अपनी सास से अपना पिंड छुड़ाना चाहता था और सदा इसका-अवसर देख रहा था।

इन्हीं दिनों जब शानी-खाँ के मारे जाने की खबर काबुल

पहुँची तो संवत् १८५५ विक्रमी में काबुल के बादशाह शाह जमान ने इस अपमान का बदला लेने के लिये पुनः पंजाब पर चढ़ाई की। उसके आते ही सामिक दस्तूर सब सिक्ख लोग भाग गए और वह बेखटके लाहौर आ कर जमा रहा। चार महीने तक लाहौर में उसका डेरा रहा पर इसी बीच में एक घटना ऐसी हुई जिससे उसने तत्काल ही काबुल लौट जाना उचित समझा। इसकी कथा इतिहासकार यों कहते हैं कि जब एक दिन सहसा शाह जमान ने काबुल वापस चलने की आज्ञा सुनाई तो उसके वजीर ने इसका कारण पूछा। उत्तर में शाह जमान ने कहा कि 'मैंने कल रात को स्वप्न देखा कि मैं सहसा बहिश्त में जा पहुँचा हूँ, जहाँ हजरत मुहम्मद साहब के पास बहुत से खुदापरस्त (ईश्वरभक्त) महात्मा बैठे हुए हैं और एक बड़ा तेजस्वी चेचकरू नौजवान काना लड़का बैठा है। मुझे देखते ही हजरत साहब ने अँगुली से इसी काने लड़के की ओर इशारा करके कहा कि "अब जमाना इसीका है।" बस इसके बाद मेरी नींद खुल गई। सो मैं खूब समझता हूँ कि यह बालक यही रणजीतसिंह है जिसने मेरे सिपहसालार शानी खाँ को मारा है। सो उससे छेड़ छाड़ करना खुदा की हुक्मउदूली करना है, इस लिये इस समय लौट जाना ही मुनासिब है।" चाहे जो हो शाह जमान फिर बिना किसी प्रकार का उत्पात मचाए सीधा काबुल की ओर लौट पड़ा। यद्यपि वर्षा के कारण चनाव बाढ़ पर थी पर उसे काबुल पहुँचने की ऐसी हड़बड़ी पड़ रही थी कि उसने उसी अवस्था ही में चनाव पार करने का इंतजाम किया, जिसमें

यह प्रकट होता है कि काबुल मे फिर कोई भीतरी फसाद उठ खडा हुआ होगा और शाह जमान को अपने हाथ से राज्य जाने की खटका हो गया होगा, जिसकी खबर पा उसे काबुल पहुँचने की इतनी चटपटी लगी थी, क्योकि काबुल का सिहासन राजा के बहुत दिनो तक दूर रहने से कदापि निरापद नहीं रह सकता, वहाँ के निवासियो का ऐसा विद्रोही स्वभाव ही है। अस्तु शाह जमान ने ज्यों त्यो कर चनाब पार करने की तैयारी की। शाह जमान को इस प्रकार से एकाएक पीठा मोडते देख कर सिक्खो ने पीछे से हमला करना चाहा, पर नीतिकुशल रणजीत ने इस अवसर पर सिक्खो को ऐसा करने से रोका ओर शाह जमान को इस आपत्ति काल मे सहायता पहुँचाई। ज्यो त्यो कर बडी कठिनाई से शाह जमान चनाव पार हुआ, पर इस हडवडी में उसकी बडी बडी आठ तोपे चनाव में डूब गई, जो बहुत कुछ उद्योग करने पर भी नहीं निकल सकीं। शाह जमान को काबुल जाने की जल्दी पडी थी, इस लिये रणजीत को बुला कर उसने कहा कि "देखो भाई रणजीत! इस अवसर पर तुमने सिक्खो को उत्पात नहीं करने दिया, इस लिये मैं शानीखाँवाला मामला भुला देता हूँ, ओर भी एक काम कर दो तो बराबर अहसानमन्द रहूँगा। मेरी जो आठ तोपे चनाव मे डूब गई हैं यदि इन्हें निकलवा कर तुम सही सलामत मेरे पास काबुल भिजवा दोगे तो मेरा बडा उपकार करोगे, इसके वदले में तुम्हें अधिकार देता हूँ कि लाहौर का जिला अपने अधिकार मे कर लो। हमारी तरफ से कुछ भी विरोध नहीं होगा। साथ ही मैं खुशी से तुम्हें राजा

की पदवी भी प्रदान करूँगा।" अस्तु, रणजीत ने अपने अभ्युदय का यह एक अच्छा अवसर आया जान, बड़े परिश्रम से आठ तोपें निकलवा कर शाह जमान के पास भेज दीं। यह कार्य्य पूरा कर के अब उसने लाहौर पर चढ़ने की ठानी। दो हज़ार वर्ष पहले से लाहौर पंजाब की राजधानी चला आता था और प्रत्येक नवप्रतिष्ठित राजा का यह लक्ष्य रहता था। शाह जमान की ओर से रणजीत को लाहौर मिल तो गया, पर यह मिलना न मिलने के तुल्य था। जब कि अपने ही बाहुबल से, अपना ही खून बहा कर अधिकार करना होगा तो फिर मिलना कैसा? हाँ, शाह जमान ने कहा था कि "इस काम में हमारी तरफ से कुछ विरोध नहीं होगा।" खैर उस छीना झपटी और लूटा खसोटी के जमाने में रणजीत ने शाह जमान की इतनी कृपा भी गनीमत समझा और वह लाहौर पर चढ़ाई करने की तैयारी करने लगा। सिक्ख मिसलों की सदा ही से लाहौर अधिकार करने की इच्छा रहती थी और अठारहवीं शताब्दी के बीच इस नगरी ने कई राजा बदले। किसी के पास भी अधिक दिनों तक यहाँ का राज्य नहीं रहने पाया था। अंत को सन् १७६४ ईसवी में लहनासिंह और गुज्जरसिंह की अधीनता में भंगी मिसलवालों ने धोखे से मोरी की राह रात को नगर में प्रविष्ट हो वहाँ के मुसलमान हाकिम को (जो हजरत बैठे नाच रंग देख रहे थे) मार डाला और नगर पर अधिकार कर लिया। इस षड्यंत्र में सर्दार शोभासिंह कन्हैया भी शामिल था। अस्तु, ये लोग तीन समान भागों में बाँट कर लाहौर का शासन करने लगे। जब अंतिम

वार अहमदशाह दुर्रानी ने पजाब पर चढाई की थी, तो लाहौर पर चढाई न कर के इन्हीं सर्दारो को इसने वहाँ का शासक स्वीकार किया था और इन्हींके वशधर इस समय भी लाहौर का शासन करते थे। इनमे से लहनासिंह और शोभासिंह के लडके नितात अयोग्य, सनकी और चरित्रहीन थे। तीसरा साहबसिंह जो कुछ योग्यता रखता था, इस समय लाहौर मे था ही नहीं। इन अयोग्य सर्दारो ने मनमाना उपद्रव मचा रखा था। जिसका द्रव्य रत्न, रुपया, पैसा जब जैसी सनक चढी वरजोरी मँगवा लेना, जब मन चला जिसकी सुदरी कन्या वधू स्त्री को बुलवा लेना, प्रजा को बेगार मे पकड कर परिश्रम करवाना, येही सब इनके शासन की करतूतें थीं। अस्तु, इनके नित्य के नए उपद्रव से लाहौर की प्रजा बहुत दुखी थी और इन्हे मन ही मन कोसती हुई किसी दूसरे न्यायी राजा के अधीन रहने की प्रार्थना किया करती थी। रणजीतसिंह की फैलती हुई यश कहानी इनके कानो तक भी पहुँच चुकी थी अथवा रणजीत ने वडी चतुरता से कुछ गुप्तचरों द्वारा प्रजा को अपनी नेकनियती का सँदेसा भेजा था जिससे बहुत सी प्रजा रणजीत के अधीन रहने की इच्छुक हुई। यह आग्रह यहाँ तक बढा कि अत को वहाँ के रईसो ने एक नियमित दरखास्त लिख कर रणजीत सिह की सेवा में भेजी और लाहौर आकर उसे अन्यायी सर्दारों के पजे से छुडा लेने की प्रार्थना की। रणजीत सिह तो तैयार ही था। अस्तु उसने यह दरखास्त अपनी बुद्धिमान सास सर्दारिन सदाकुँवर को दिखाई जिस पर सर्दार गुरबक्स सिह

सथा और भी कई मुसलमान रईसों के दस्तखत थे। सदाकुँवर ने चढ़ाई करने के पहले किसी विश्वासी सर्दार को भेज कर लाहौर के प्रधान प्रधान रईसों से सब मामला ठीक ठाक कर लेने की राय दी। तदनुसार रणजीत सिंह ने अपने मुसाहिब काजी अबदुल रहमान को लाहौर के नामी रईस मियाँ आशिक मुहम्मद के पास सब बात चीत ठीक करने के लिये गुप्त रूप से भेजा। यह व्यापारी वेष से लाहौर में प्रविष्ट हुआ और मियाँ आशिक मुहम्मद, सर्दार गुरबक्स सिंह तथा अन्य कई नामी रईसों की एक गुप्त गोष्टी हुई जिसमे यह तय हुआ कि सर्दार रणजीत सिंह सीधे लाहौर आवे और नगर के निकट आने पर हम लोग लुहारी दरवाजा * खोल देंगे तथा सब तरह से सहायता पहुँचाएँगे। रणजीत ने अपनी सेना को तैयार होने की आज्ञा दी और तैयार हो जाने पर किसी को कुछ सदेह न हो, इस लिये पहले अभीष्ट स्थान की ओर कूच न कर अपनी सास सदाकुँवर के पास वह चटाले गया। वहाँ से सास की सेना भी अपने साथ लेकर अमृतसर दर्बार साहब में उसने जाकर अरदास पढवाई और सारी सेना का कड़ाह प्रसाद चखवा कर मुँह मीठा करवाया। फिर पाँच हजार प्रबल खालसा सवारों को साथ लेकर बीस वर्ष का नवयुवक रणजीतसिंह लाहौर अधिकार करने की इच्छा से, उत्साह और उमग से भरा हुआ उसी ओर चल पडा।

* विदित रहे कि लाहौर नगर शहरपनाह से घिरा हुआ है, जिसम प्रविष्ट होने के लिये सोल्ह बड़े बड़े फाटक हैं। इन्हींम से एक का नाम लुहारी दरवाजा है। अब तो इन फाटकों से कुछ काम नहीं लिया जाता। वे सदा खुले रहते हैं।

चौथा अध्याय।

रणजीत का लाहौर अधिकार और महाराज की पदवी धारण करना।

संध्या का समय है। अभी अच्छे प्रकार से सूर्य्य अस्त नहीं हुए हैं। कुछ कुछ किरणों की लाली बाकी है। पश्चिम प्रान्त में कुछ बादल के टुकडे डूबते हुए सूरज की सुनहली किरणों में रंजित हो एक अपूर्व शोभा को धारण कर रहे हैं। भगवान् अंशुमाली अभी एक वृक्ष के शिखर के पीछे दिखाई दे रहे थे। किरणों में मध्यान्हकाल जैसी प्रखरता न थी। देखते देखते सघन वृक्षों के बीच बीच से मंद मंद किरणें कहीं कहीं फूट फूट कर आने लगीं। एक प्रकार की शीतल पर सुखदायक हवा चल रही थी, जिसके झकोरे से धान के खेतों में एक अनोखी-लहर पैदा हो रही थी, मानों पृथिवी देवी ने लहरिया डोरिएदार धानी दुपट्टा ओढ़ा हो जो सूर्य्य देव की चला चली की तैयारी देख अपनी शोभा अदृश्य हो जाने की आशंका से चंचलता के कारण सँभाले नहीं सँभलता और फर फर उड़ा जाता है। देखिए, धीरे धीरे भगवान् अंशुमाली ने अस्ताचल को गमन किया। वही सुखदायक हवा अब कुछ और भी आनंद और शांतिप्रद मालूम पड़ने लगी। ग्रामों से बाहर खेत में काम करते हुए किसानों ने हल कंधे पर रक्खा, कृषक-बालकों ने गायों को इकट्ठा कर मधुर स्वर से गायन करते हुए अपनी कुटिया की

ओर पयान किया। दो एक बछडे जो पिछड गए थे, दौड़ दौड कर रभाते हुए अपनी माता के पास आने लगे और माता प्रेम से उनका शरीर चाटने लगी। एक ओर ग्राम-पथ में तो यह दृश्य था, दूसरी ओर पास ही राजमार्ग पर दूर से गोधूली लग्न में कृषकों ने बडी धूल उडती हुई देखी जो इधर ही को आ रही थी, इस लिये इसका यथार्थ कारण जानने की इच्छा से वे लोग ठहर गए। दस ही पद्रह मिनिट बाद कुछ शस्त्रधारी सवार दिखाई दिए, जिनके चमकते हुए नेजों पर केसरिए रग की झडिया उड रही थीं। पोशाक भी इन सबों की हल्के केसरिए अथवा सोनजरद रग की थी, जो दूर से सुवर्ण की तरह चमक रही थी। गिनती मे ये सब सवार पाच हजार से कम न थे, जो कमर में तलवार लटकाए, पीठ पर बदूक बाँधे बडी शान मे फौजी कायदे के अनुसार घोडे को चलाते हुए आ रहे थे, इन सबो के आगे सफेद अरबी घोडी पर सवार एक बीस वर्ष का नवयुवक हाथ मे नगी तलवार लिए और बसती साफा बाँधे बडी शान से डटा था। कमर मे पिस्तौल खुसी हुई थी और पीठ पर ढाल और बँदूक दोनो कसी थीं। यह शरीर का छरीला जवान उन्हीं किसानो की ओर एक आँख कानी होने के कारण, एक ही आँख से बडी तेजी मे, भेद भरी और खोज भरी दृष्टि से देखता हुआ आगे आगे घोडी छोडे चला आ रहा था। पाठकों को कहना नहीं होगा कि यही बहादुर सुकरचकिया मिसल का सर्दार रणजीत सिंह है जिसकी कानी आँख का जिक्र ही उसे पहचनवा देने के लिये यथेष्ट है। अस्तु, रणजीत सिंह अपने पूरे

ठाठ बाठ से सवत १८५६ विक्रमाब्द के आषाढ मास कृष्ण पक्ष की एक सध्या को पाच हजार खालसा वीरो के साथ लाहौर के बाहरी ग्रामों का सायकालीन दृश्य देखता हुआ, नगर के निकट जा पहुँचा और पहले के प्रबंध के अनुसार नगर के बाहर नवाब वजीरखाँ की बारहदरी में उसने डेरा डाला। यह स्थान लाहौर के अनारकली बाजार मे है, जहाँ अब सर्कारी पुस्तकालय स्थापित है । इसीके निकट सेना ने भी पडाव डाला। उस स्थान पर आजकल सर्कारी डाकखाना बना हुआ है, मानो पहले ही से भगवान् ने यह सूचित कर दिया कि रणजीत की चढती हुई कीर्त्ति की चर्चा केवल पुस्तकों म रह जायगी अथवा खालसा सेना वृटिश गवर्नमेंट की सेवक हो उसके राज्य को एक देश से दूसरे देश मे फैलाने का कार्य्य करगी । खैर जो हो, रणजीत ने अपने पहुचने का सवाद लौहार के षटयत्रकारी रईसों के पास गुप्तचरो द्वारा भेज दिया। रात ही को दूत लौट कर आया और उसने यह सँदेसा दिया कि "हम लोगों ने सब काम ठीक कर रक्खा है, आप रात्रि के समय फाटक की एक खिडकी की राह से पहले छिप कर आइए और सलाह मशविरा हो जाने के उपरात फिर दूसरी कारवाई की जायगी।" रणजीत ने कहला भेजा कि "मैं उक्त प्रकार से कदापि न आऊँगा। जब आऊँगा ससैन्य दिन के समय फाटक की राह से नगर में प्रवेश करूँगा। जैसा पहले इतजाम हो चुका है उसमें अब उलट फेर नहीं होना चाहिए।" रणजीत सिंह के आने का समाचार लाहौर के शासक सर्दारो को भी विदित हो गया। दूसरे दिन सबेरे ही करीब पाच सौ सवारो

ने आकर रणजीत की सेना पर हल्ला बोल दिया। पाँच हजार प्रबल वीरों के सामने ये क्या चीज थे । भुट्टा ऐसे काट कर बिछा दिए गए । दूसरे दिन उसने कहला भेजा कि कल प्रात काल संवत १८५६ आषाढ कृष्ण ५ को साढे सात बजे लुहारी दरवाजा खुला रहना चाहिए । उसी द्वार से मै प्रविष्ट होऊँगा। अस्तु, उल्लिखित रईसों ने वैसा ही प्रबंध कर दिया और चार हजार सवारों को बाहर छोड केवल एक हजार सवारों के साथ रणजीत उस दिन प्रात काल नगर की ओर चला । उस ओर आते ही द्वार खुला मिला और "वाह गुरू की फतह" का उच्चारण कर सबों ने बे रोक टोक नगर मे प्रवेश किया । नगर मे प्रविष्ट हो रणजीत ने सीधे किले की तरफ घोडे की बाग-डोर उठाई । रणजीत के उधर जाने के बाद सिपाहियो का सर्दार चेतसिंह कुछ सेना के साथ लुहारी दरवाजे की ओर आया, पर वहाँ द्वार पर जो रक्षक थे सबके सब रणजीत से मिले हुए थे, सो उन्होंने झूठे ही सर्दार चेतसिंह से कह दिया कि "रणजीत इधर आया था, पर हम लोगों को सचेत पा दिल्ली दर्वाजे की तरफ चला गया है । आप फौरन उधर जा कर उसका मार्ग रोकिए ।" सर्दार चेतसिंह जब उधर की तरफ चला गया तो इन लोगों ने पुन द्वार खोल कर बाकी के और चार हजार सवारों को भी भीतर ले लिया । अब तो सर्दार चेतसिंह को ज्याद हुल्लड देख कर द्वारपालों का धोखा मालूम हो गया और वह बेतहाशा घोडा दौडा किले के भीतर एक गुप्त मार्ग से रणजीत के पहुँचने के पहले ही जा घुसा और फाटक बंद कर उसने बुर्जियों पर तोपें चढा दीं । बाकी के दो सर्दार

ठाठ बाठ से संवत १८५६ विक्रमाब्द के आषाढ मास कृष्ण पक्ष की एक संध्या को पांच हजार खालसा वीरों के साथ लाहौर के बाहरी ग्रामों का सायंकालीन दृश्य देखता हुआ, नगर के निकट जा पहुँचा और पहले के प्रबंध के अनुसार नगर के बाहर नवाब वजीरखाँ की बारहदरी में उसने डेरा डाला। यह स्थान लाहौर के अनारकली बाजार मे है, जहाँ अब सर्कारी पुस्तकालय स्थापित है। इसीके निकट सेना ने भी पड़ाव डाला। उस स्थान पर आजकल सर्कारी डाकखाना बना हुआ है, मानो पहले ही से भगवान् ने यह सूचित कर दिया कि रणजीत की चढ़ती हुई कीर्त्ति की चर्चा केवल पुस्तकों में रह जायगी अथवा खाल्सा सेना बृटिश गवर्नमेंट की सेवक हो उसके राज्य को एक देश से दूसरे देश मे फैलाने का कार्य्य करेगी। खैर जो हो, रणजीत ने अपने पहुंचने का सवाद लौहार के षडयन्त्रकारी रईसों के पास गुप्तचरों द्वारा भेज दिया। रात ही को दूत लौट कर आया और उसने यह सँदेसा दिया कि "हम लोगों ने सब काम ठीक कर रक्खा है, आप रात्रि के समय फाटक की एक खिड़की की राह से पहले छिप कर आइए और सलाह मशविरा हो जाने के उपरांत फिर दूसरी कारवाई की जायगी।" रणजीत ने कहला भेजा कि "मैं उक्त प्रकार से कदापि न आऊँगा। जब आऊँगा ससैन्य दिन के समय फाटक की राह से नगर मे प्रवेश करूँगा। जैसा पहले इंतजाम हो चुका है उसमें अब उलट फेर नहीं होना चाहिए।' रणजीत सिंह के आने का समाचार लाहौर के शासक सर्दारों को भी विदित हो गया। दूसरे दिन सवेरे ही करीब पांच सौ सवारों

ने आकर रणजीत की सेना पर हल्ला बोल दिया। पाँच हजार प्रबल वीरों के सामने ये क्या चीज थे। भुट्टा ऐसे काट कर निछा दिए गए। दूसरे दिन उसने कहला भेजा कि कल प्रात काल संवत १८५६ आषाढ कृष्ण ५ को साढे सात बजे लुहारी दरवाजा खुला रहना चाहिए। उसी द्वार से मैं प्रविष्ट होऊँगा। अस्तु, उल्लिखित रईसो ने वैसा ही प्रबंध कर दिया और चार हजार सवारों को बाहर छोड केवल एक हजार सवारों के साथ रणजीत उस दिन प्रात काल नगर की ओर चला। उस ओर आते ही द्वार खुला मिला और "वाह गुरू की फतह" का उच्चारण कर सबों ने बे रोक टोक नगर मे प्रवेश किया। नगर मे प्रविष्ट हो रणजीत ने सीधे किले की तरफ घोड़े की बाग-डोर उठाई। रणजीत के उधर जाने के बाद विपक्षियों का सर्दार चेतसिंह कुछ सेना के साथ लुहारी दरवाजे की ओर आया, पर यहाँ द्वार पर जो रक्षक थे सबके सब रणजीत से मिले हुए थे, सो उन्होंने झूठे ही सर्दार चेतसिंह से कह दिया कि "रणजीत इधर आया था, पर हम लोगों को सचेत पा दिल्ली दर्वाजे की तरफ चला गया है। आप फौरन उधर जा कर उसका मार्ग रोकिए।" सर्दार चेतसिंह ज्यो उधर की तरफ चला गया तो इन लोगों ने पुन द्वार खोल कर बाकी के और चार हजार सवारों को भी भीतर ले लिया। अब तो सर्दार चेतसिंह को ज्याद हुल्लड़ देख कर द्वारपालों का धोखा मालूम हो गया और वह नेतहाशा धौड़ा दौडा किले के भीतर एक गुप्त मार्ग से रणजीत के पहुँचने के पहले ही जा घुसा और फाटक बंद कर उसने बुर्जियो पर तोपें चढा दीं। बाकी के दो सर्दार

पहले भाग चुके थे। अस्तु, रणजीत ने जब किले पर तोपें चढ़ी देखीं तो वह ठहर गया और अपने तोपखाने को बुलवा कर उसने आगे किया। अब दोनों ओर से दनादन तोपें छूटने लगीं और अग्निलीला होने लगी। दिनभर लड़ाई जारी रही। इस मौके पर रणजीत की बहादुर और चतुर सास सदाकुँवर भी साथ थी। उसने रणजीत को समझाया कि "मुस्तैदी से किले को चारों ओर से घेर लो, जिसमें किसी मार्ग से भी कोई सामान भीतर न जाने पावे क्यो कि मुझे खबर लग चुकी है कि किले के भीतर बहुत थोड़े से सिपाही हैं और युद्ध की सामग्री भी बहुत कम है। दो ही एक दिन में किला हाथ में आ जायगा।' रणजीत ने ऐसा ही किया। किले को चारों ओर से घेर कर, सब मार्ग बंद कर लिए गए। उसका फल भी वैसा ही हुआ। वास्तव में बुद्धिमती सदाकुँवर ने जो बात कही थी वह सही निकली। सर्दार चेतसिंह ने जब देखा कि किला चारों तरफ से घिर गया और युद्ध की सामग्री यथेष्ट नहीं है तो दूसरे ही दिन प्रातःकाल उसने सुलह का पैगाम भेजा। रणजीत ने कहला भेजा कि "यदि शांतिपूर्वक किला छोड़ दो, तो तुम्हारे साथ अच्छा बर्ताव किया जायगा।" सर्दार चेतसिंह तत्काल ही घोड़े पर सवार हो कर किले के बाहर आया और उसने किले के सिलहखाने और खजाने की ताली का गुच्छा रणजीत को अर्पण किया। रणजीत ने उसकी बहुत प्रतिष्ठा की और उसी समय जीविकानिर्वाह के लिये उसे ग्राम-जागीर में दान किए। वह तत्काल ही लाहौर त्याग कर चला गया। अब तो रणजीत ने बड़ी खुशी खुशी किले में

प्रवेश किया और बुर्जों पर सुकरचकियों का वसती झंडा फहराने लगा। किले में प्रविष्ट हो उसने यथातथ्य सब चीजें सँभालीं। इधर सिक्ख सेना ने लूट मचाने के लिये नगर की ओर कदम बढ़ाया। रणजीत ने फौरन सवार दौड़ा कर सब को रोक लिया। यद्यपि सेना कुछ असंतुष्ट हुई पर सर्दार की आज्ञा पा फौरन वापस आई और रणजीत नें सबों को यह हुक्म सुना दिया कि जो कोई इस मौके पर लूटपाट करेगा वह कठोर दण्ड पावेगा।

अस्तु, प्रजा इन प्रबल सिक्ख सर्दारों के अत्याचार से बच गई और नवागत वीरवर सर्दार रणजीतसिंह का गुण बखाननें लगी, क्यों कि आजतक कोई भी राज्य-परिवर्तन बिना लूटपाट के इन्होंने नहीं देखा था। उन दिनों की यही चाल थी। अस्तु प्रजा सब धन्य धन्य करनें लगी। दूसरे दिन नगर के मुख्य मुख्य रईसों ने आ कर रणजीतसिंह से भेंट की और नज़राना पेश किया। रणजीत ने सबको यथायोग्य सभाषण कर संतुष्ट किया और अपनें सर्दारों तथा प्रधान प्रधान नागरिकों को खिल्लत और इनाम बाँटा तथा नगर भर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि "प्रजा सब अपने अपने काम में बेखटके लगे और व्यापार लेन देन पूर्ववत् जारी रक्खे। सब कोई निर्भय रहे। सिपाहियों को कठिन आज्ञा दे दी गई है कि किसी प्रजा को तंग न करने पावे।" पहले सर्दारों के शासन में यह चाल थी कि सर्दार साहब को या सिपाहियों को जिस चीज की जरूरत पड़ती वह बेगार में बरजोरी ले ली जाती थी, मूल्य माँगने की भला हिम्मत किसकी पड़ सकती थी? पर रणजीतसिंह ने

तथा कसूर का हाकिम निजामुद्दीन भी इस गोष्ठी मे शामिल हुआ। अस्तु बहुत भारी दलबल के साथ ये लोग लाहौर पर चढाई करने की इच्छा से उधर ही रवाना हुए। इन्होने विचारा था कि अब की बार रणजीत को कुचल कर सदा का टटा एक-बारही मिटा दें। इस लिये अन्य छोटे छोटे सर्दारो को भी सबाद भेज दिया गया कि लाहौर की राह मे आकर दल की पुष्टि करते रहें। अस्तु, रवाना हो कर कुछ सर्दारों के आसरे ये लोग लाहौर से बाहर दस कोस पर जा ठहरे। रणजीत को जब यह खबर मिली तो वह कुछ चिंतित हुआ। कारण यह था कि सिक्खा को सदा से लूट की बान थी और जब किसी नवीन मुकाम पर चढाई होती तो लूट के लालच से वे जी खोल कर लडते थे, सो लाहौरवाले मामले में उनके कुछ भी हाथ न आया, उलटे उनकी स्वतत्रता के मार्ग मे काटे बो दिए गए। इस कारण रणजीत के सिपाही भी इस मौके पर कुछ नाराज थे। लाहौर मे रणजीत के पास इस समय कुछ भी रुपया नहीं था और अपने इलाके गुजराँवाला ही से द्रव्य मँगाने का मौका न था। छोटे बडे सब काम द्रव्य ही से होते हे। अस्तु, ऐसे अवसर पर रणजीत का चिंतित होना उचित था। पर जब दिन अच्छे होते है तो अनायास ही सब काम आप मे आप हो जाया करते है। वही बात यहाँ भी हुई। रणजीत इसी चिता मे था कि अस्सी वर्ष के एक बूढे ने आकर कहा कि "यदि आप मेरे पोषण का भार अपने ऊपर लेने की प्रतिज्ञा करें तो मैं आपको एक गुप्त खजाने का जो लाहौर के किले ही में है, पता दे सकता हूँ।" रणजीत ने अकाल

पुरुष की सहायता का सँदेसा आया जान, सहर्ष उस वृद्ध का प्रस्ताव अगीकार किया तथा उसके निर्देशानुसार एक स्थान पर खोदने से वहुत सा द्रव्य प्राप्त हुआ और कई तोप भी मिलीं, मानो भगवान ने स्वय आकर रणजीत को इस अवसर पर सहायता दी। उसने तत्काल ही अपने सिपाहियों को दो मास का आगामी वेतन देकर खुश कर लिया और सब तोपों को मरम्मत और ठीक ठाक करवा कर वह बड़े उत्साह से लाहौर से वाहर एक कोस पर मैदान में शत्रुओं के मुकाबले के लिये आ डटा। रणजीत के बाहर निकलते ही लडाई शुरू हो गई, पर इसकी तोपों के सामने शत्रुओं के कलेजे दहल गए और वे लोग पीछे हट कर लाग घात से लडने लगे। सिवाय पहले रोज के फिर कभी घमासान युद्ध नहीं हुआ। शत्रु लग गए कि उन्होंने रणजीत को छेड कर बरों का छत्ता छेडा है। रणजीत उन्हें एक घडी भी चैन नहीं लेने देता था। यों तो दिन भर खडयुद्ध हुआ ही करता था, पर रात को भी जब मौका पाते रणजीत के सिपाही शत्रुओं पर जा टूटते थे और उनका काम तमाम करते थे। कभी कभी रात्रि ही को रणजीत की तोप आग उगलने लगती थी। तात्पर्य यह कि इस प्रकार के युद्ध से शत्रु लोग वडे व्यस्त हो उठे, उनके वहुत से सिपाही भी मारे गए और बहुत कुछ गोली बारूद भी खर्च हो गया पर निपटेरा होने की कोई नौबत न दिखाई दी। तब तो उकता कर एक दिन सध्या को विपक्षियों के सर्दार गुलाबसिंह भगी ने जो इस युद्ध का मुखिया था, सबको इकट्ठा किया और कहा कि "भाइयो इस तरह की सुस्ती से काम नहीं

चलेगा, कल प्रात काल सब लोग इकट्ठे मिलकर चढ चलो और कानें की तोपें छीन लो, पहले सौ दो सौ सिपाही मर जाँय तो घवडाना नहीं, तोपों का मुँह वद किए विना लडाई वद नही होगी, फिर तोपें दखल कर के तव रणजीत की बोटी बोटी काट कर फेंक दो। एक भी सुकरचाकिया वच कर न जाने पावे।" यही सलाह पक्की कर, मनही मन मनमोदक खाते हुए गुलावसिह ने शराव का प्याला लाने की आज्ञा दी और दौर चलने लगा। प्याले पर प्याला, फिर प्याला, "पीत्वा पीत्वा पुन पीत्वा यावत् पतति भूतले, पुनरुत्थाय वै पीत्वा", वाला मामला हो गया। नशे मे बेहोश हो कर सरदार जी खुर्राटे लेने लगे। घोर निद्रा मे अचेत हो गए, पर दैवी गति कौन जाने! सवेरा होने पर जब रणजीत की तोपें गरजने लगीं तब भी सरदार जी की निद्रा न खुली। लोगो के जगान हिलाने डुलाने पर सरदार जी भिनके तक नहीं तब तो लोगो को कुछ शका हुई, अच्छी तरह परीक्षा कर के देखा तो हाय! यह क्या हो गया। सरदार जी की निद्रा तो महानिद्रा हो गई! साए तो सोए ही रह गए! ऐसे सोए कि फिर न उठे। सारी सेना मे कोहराम मच गया। लडाई कौन करता? रणजीत ने जब शत्रुओ की ओर से सुस्ती देखी तो वह एकदम टूट पडा, और उसके सवार शत्रुओ की लाइन के भीतर पैठ कर तलवार चलाने लगे। अब तो भगी और रामगढियो की वेदिल सेना के हाथ पैर फूल गए, जिसकी जिधर निगाह गई भाग निकला। मैदान रणजीत के हाथ रहा। सरदार जस्सा सिंह का पीछा किया गया पर वह हाथ न आया। - खुशी खुशी विजय

का डका बजाता हुआ बाँका बहादुर रणजीतसिंह लाहौर मे वापस आया। विपक्षियो के खेमे की लूट मे का सब माल उसने सिपाहियो को लुटा दिया। कई दिन तक खुशी का जलसा और नाचरग होता रहा। इन सब जल्सों से निपट कर रणजीत ने नियमपूर्वक महाराजा की पदवी धारण कर लाहौर के सिंहासन पर बैठने की इच्छा की और आगामी राजतिलक की तैयारी करने की आज्ञा दी। जब शुभ घडी आती है तो सब शुभ ही शुभ होता है। अस्तु, इन्हीं दिनो जब कि रणजीत राजतिल्क की तैयारी मे लगा हुआ था, अपनी जागीर पर से उसे यह सवाद आया कि सवत् १८५७ विक्रमी मिती फाल्गुन सुदी ७ को उसके यहॉ पत्नी राजकुमारी के गर्भ से एक पुत्र-रत्न ने जन्मग्रहण किया है। रणजीतसिंह ने बडी खुशी मनाई और नाचरग तथा जलसे होने लगे। वाह गुरु की अरदास पढवा कर सैंकडों मन तरातर हलुवा दीन दरिद्रों को बाँटा गया। नगों को वस्त्र भी दिए गए। इन दिनो कोई याचक विमुख नहीं गया। अस्तु, अब उस राजतिलक का दिन आ पहुँचा जिसकी तैयारी महीनो पहले से हो रही थी। सवेरे ही से सहनाई नफीरी और नक्कारों की आवाज से नगर मे उत्सव की सूचना हो गई। किले पर तरह तरह की रग बिरगी झडियाँ, फूलो के गजरे और तोरण बदनवार टाँगे गए। सडको पर पानी का छिडकाव हो गया। रणजीत की सारी सेना नवीन वस्त्र और अस्त्रो से सुसज्जित हो कतार बाध कर हाथों में नगी तलवार लिए किले के भीतर से बाहर तक खड़ी हो गई। बड़ा भारी पट-मण्डप तान कर दर्बारगृह रचा गया। नगर के बड़े बड़े

प्रतिष्ठित रईस प्रात काल सात ही बजे से सज धज कर किले में आने लगे। दोपहर के बारह बजे दर्बार का समय नियत था। जब सब प्रतिष्ठित नागरिक दर्बार में विराजमान हो चुके तो तोपों की गड़ागड़ाहट से रणजीत सिंह के आने का समय सूचित हुआ। आगे आगे दीवान मोतीराम, पीछे रणजीत सिंह साफा बांधे कलगी तुर्रा लगाए बसती मखमली पोशाक पहने, कमर में जड़ाऊ पेटी से रत्नजटित मखमल की तल्वार लटकाए थे। इस ठाट से रणजीत सिंह सोने के मखमली सिंहासन पर आ विराजे। इनके पधारते ही सब लोग उठ खड़े हुए और सबो ने "सत्य श्रीकाल वाह गुरु की फतह" का जयजयकार उच्चारण किया, तदुपरांत रणजीत सिंह सिंहासन पर विराजे। अब पुरोहित जी ने वेद मन्त्रोच्चारण कर रणजीत पर जल छिड़क कर अभिषेक किया, फिर केशर कुंकुम कस्तूरी मिश्रित तिलक लगा कर सिर पर अबीर डाला। एक नंगी तलवार हाथ में लेकर महाराज के नीचे उतरते ही, उपस्थित जन समुदाय ने "महाराज रणजीत सिंह की जय" ऐसे शब्द से जयजयकार किया। तदुपरांत एक सौ एक नए सिक्के जो तत्काल ही इस अवसर के लिये बन कर आए थे एक चाँदी की परात में रख कर महाराज के सामने लाए गए, महाराज ने उन्हें स्पर्श कर दरिद्रों को बाँट देने की आज्ञा दी। महाराज रणजीत सिंह की टकसाल का यही पहला रुपया था। इस पर एक तरफ फारसी में यह इबारत थी "दीन व वेग व फतह व नसरत वेदरंग, याफ्त अज नानक गुरु गोविंद सिंह" और दूसरी तरफ महाराज रणजीत

सिंह और संवत तथा स्थान लिखा हुआ था। उक्त कार्रवाई होने के बाद माहाराज ने छोटासा एक व्याख्यान दिया, जो यह था" मेरे बहादुर सिपाहियों, लाहौर के रईसो और प्रजाओ! आज बड़े आनंद का दिन है कि अकाल पुरुष की कृपा और आप लोगों की सहायता से ऐसा अवसर आया है कि मैं आप लोगों को अत्याचारी शासकों के पंजे से छुड़ा सका। इसमें कुछ मेरी करतूत नहीं है। सब अकाल पुरुष की मरजी है, वही सब का सर्कार है, उसीकी आज्ञा पर आज से यह गद्दी प्रतिष्ठित हुई है। अस्तु, आज से आप लोग गद्दी का नामोल्लेख करते समय मेरा नाम न लेकर "सर्कार" ऐसा संबोधन किया करें और वही सब प्रकार से आप लोगों की रक्षा करेगा।' इसके उपरांत 'सर्कार की जय' ऐसे शब्द से फिर सभा ने जयजयकार किया। यह हो जाने के उपरांत मुख्य मुख्य रईसों ने नजर पेश की जिन्हें छूकर महाराज ने सब का सम्मानित किया। फिर सारे दरबारियों को यथोपयुक्त खिलत दी गई और पुरस्कार वितरण हुआ। मोतीराम दीवान नियत किया गया और शहरपनाह फिर से मरम्मत करवाने के लिये उसे एक लक्ष मुद्रा देने की आज्ञा हुई और नगर के प्रत्येक द्वारा पर तोपें चढवा कर यथोपयुक्त पहरेदार नियत किए गए। मियाँ निजामुद्दीन काजी बनाया गया और मिरजा इमामबक्श को कोतवाली दी गई तथा हकीम इमामुद्दीन को राजवैद्य का पद दिया गया।

रणजीत ने राज्य का इंतजाम जिस खूबी से करना शुरू किया उसका वर्णन अन्यत्र आवेगा। यहाँ केवल इतना ही कह

देना बहुत है कि उसके नए इतजाम से अमीर गरीब छोटे बड प्रसन्न हुए और उसकी बढती मनाने लगे। पर अभी तक उसे शत्रुओं से छुट्टी नहीं मिली थी। भागे हुए सरदारों मे से भगी सरदार साहब सिह पुन लाहौर पर चढाई करने की नीयत से गुजरात मे सेना इकट्ठी करने लगा। इस सवाद के मिलते ही, शत्रु के तैयार होने के पहले ही रणजीत अपनी सेना लेकर साहब सिह के किले पर चढ धाया। साहब सिह भगी ने किला बद कर तोपो से लडना आरभ किया पर रणजीत की प्रवल तोपो की मार ने साहब सिह की तोपो का मुँह बद कर दिया और किले के टूट जाने का डर घडी भय होने लगा। तव तो साहब सिह भगी बहुत घबडाया और उसने रणजीत के पास सुलह का पैगाम भेजा। रणजीत ने एक लाख रूपया हर्जाने का लेकर अवरोध उठा लिया और वह लाहौर चला आया। लाहौर आकर उसे खबर मिली कि साहब सिह भगी की इस गोष्ठी मे सरदार दल सिह अकालगढिया भी था। अस्तु, उसने वडी चतुरता से दलसिह को किसी विशेष आवश्यक बात करने का सँदेशा भेज कर अपने पास बुलाया और आने पर पहले वडी खातिर करके मौका देख कर उसके पैरों मे बेड़ी डाल दी और उस कैदखाने मे बद करके अपनी सेना के साथ अकालगढ का किला जा घेरा। यहा यद्यपि किले का स्वामी न था पर सरदार दल सिह की वीरपत्नी ने तत्काल ही किले का फाटक बद कर बुर्जियो पर तोपे चढा दी और वडी मुस्तैदी से वह रणजीत की सेना पर गोले वरसाने लगी। जब मौका मिला तो इसकी बहादुर फौज बाहर भी आकर रणजीत की सेना से लोहा

लेती और फिर किले के भीतर हो जाती थी। इधर तो इसने रणजीत को यों चक्षा रक्खा और उधर साहब सिंह भगी को अपनी रक्षा के लिये बुला भेजा। रणजीत ने जब यह समाचार सुना तो वह इस किले का अवरोध त्याग कर साहब सिंह के विरुद्ध चढ गया। साहब सिंह ने वजीराबाद के हाकिम से भी सहायता माँगी थी पर रणजीत ने वजीराबाद के हाकिम के पास इस आशय का एक पत्र भेजा कि "तुम हमारे घराने के पुराने सेवक हो कर, इस समय साहब सिंह का साथ देकर हरगिज नमकहरामी मत करना, नहीं तो में तुम्हारे साथ मौका पाकर बहुत बुरी तरह पेश आऊँगा।" हाकिम वजीराबाद रणजीत का धमकी पाकर चुपचाप बैठा रहा। इधर रणजीत ने साहब सिंह को जाकर आड़े हाथों लिया। यद्यपि तीन दिन तक लडाई जारी रही पर जब चौथे दिन रणजीत की तोपों ने साहब सिंह के किले की दीवार मे बडा सा छेद कर दिया तब तो घबडा कर साहब सिंह ने अमृतसर के बाबा साहब सिंह वेदी से सिफारिश करा रणजीत से पुन सुलह का पैगाम चलाया। रणजीत ने बाबा साहब के कहने से एक लाख रुपया पुन हर्जाने का लिया और बाबा साहब को बीच मे डाल कर यह प्रतिज्ञा करवा ली कि साहब सिंह फिर कभी लाहौर के विरुद्ध शस्त्र नहीं उठावेगा और सरदार दल सिंह कैद से छोड दिया जायगा। रणजीत ने लाहौर आकर दल सिंह को छोड़ दिया जो अपने इलाके अकालगढ मे चला गया, और वहाँ जाकर थोडे ही दिनों मे मर गया। रणजीत ने जब यह खबर सुनी तो दल सिंह की विधवा स्त्री को धोखे से अपने पास

बुला कर उसके किले पर अपना अधिकार कर लिया तथा विधवा के गुजारे के लिये दो ग्रामों का पट्टा दे दिया।

अकालगढ़ अधिकार करके रणजीत ने कसूर की ओर निगाह उठाई और थोड़ी सी लड़ाई के बाद वहाँ के सरदार ने भी महाराज लाहौर की ताबेदारी कबूल की। अब रणजीत ने यह विचारा कि एक बार इन लोगों की परीक्षा लेनी चाहिए कि ये लोग अवसर पड़ने पर मेरी आज्ञा मानेंगे या नहीं। इसी अभिप्राय से उसने अपने करद सरदारों को लाहौर बुलवा भेजा। पर न तो कोई आया और न किसी ने कुछ जवाब ही भेजा। केवल कसूर के सरदार फतह सिंह ने यह जवाब भेजा कि—"पिता की मृत्यु के कारण मैं अशौच में हूँ, नहीं तो अवश्य सरकार की सेवा में उपस्थित होता।" रणजीत ने यह खबर पा मातमपुर्सी करने के लिये सरदार फतह सिंह के इलाके की ओर पयान किया, क्योंकि उसे अब अच्छी तरह सूझ गया कि बिना दो चार प्रभावशाली सरदारों को विश्वासी मित्र बनाए काम नहीं चलेगा। इस लिये वह स्वयं मातमपुर्सी के लिये कसूर गया। पर जब सरदार फतह सिंह ने महाराज का इधर आना सुना तो उसे कुछ सन्देह हुआ और बड़ी चतुरता से दो कोस आगे आकर वह महाराज से मिला और बड़ी खातिर से उनको नगर के बाहर ही एक बाग में उसने ला टिकाया। रणजीत ताड़ गया कि इसके मन में सन्देह है और बोला कि "भाइ फतह सिंह! मैं तो तुम्हें अपना समझ कर तुम्हारे घर मातमपुर्सी करने दौड़ आया और तुम मेरा विश्वास ही नहीं करते हो। यदि मुझे तुम्हारी जागीर ही छीननी होती तो क्या वह अब

तक नहीं रह जाती। निश्चय रक्खो, मैं केवल अपनी सच्ची मित्रता का विश्वास दिलाने यहाँ आया हूँ। कुछ तुम्हें धोखा देने नहीं आया जो तुम इतना सहमते हो।" यह कह कर रणजीत ने सरदार फतह सिंह से मित्रतासूचक पगड़ी बदलौवल की और वह उसे अपने साथ अमृतसर दरबार साहब में ले आया तथा दोनों ने ग्रंथ साहब को स्पर्श कर सच्चा विश्वासी मित्र रहने का प्रण किया और परस्पर सहायता देने का एक प्रतिज्ञापत्र भी लिख दिया। इसी प्रकार से साम, दाम, दंड, भेद का अवलम्बन कर प्रतापी रणजीत अपने राज्य का विस्तार करने लगा जिसका विवरण आगे के अध्याय में आवेगा।

पाँचवाँ अध्याय।

रणजीत का राज्य-विस्तार।

अमृतसर से वापस आने पर महाराज को खबर लगी कि उनकी सास सदाकुँवर के इलाके पर काँगडे के राजा संसार ने चढाई की है। रणजीत तत्काल ही वहाँ जाने की तैयारी ने लगा तथा अपनी सहायता के लिये सरदार फतह सिंह भी बुला कर बड़ी धूमधाम से उधर ही को रवाना हुआ। ार चद्र ने जब रणजीत के आने की खबर सुनी तो वह का किला छोड कर भाग गया। पर रणजीत ने पीछा न छोडा। वह सीधा उसके इलाके की ओर चढा गया और नूरपुर नाम का एक इलाका दखल कर उसने सास को दिया। यहाँ से लौट कर कुछ सेना के साथ वह पठानकोट पर चढ गया और उसे युद्ध में परास्त कर सारा इलाका छीन कर उसने अपने राज्य में मिला लिया एक ग्राम उसे गुजारे करने के लिये दे दिए। इन इलाकों से पिंडी भट्टीयान का इलाका महाराज ने सरदार फतह को मित्रता के उपहारस्वरूप दिया। इसके बाद एक दूसरा सरदार फतह सिंह ठीकीया था, जिसके इलाके पर करते ही वह महाराज के भय से भाग गया और उस इलाका तथा किला इत्यादि सब महाराज के अधिकार मे । यहाँ से लौट आने पर उसे यह सवाद मिला कि पिंडी

भट्टीयान के जमींदार को जस्सा सिंह भगी ने बहुत तग कर रक्खा है। रणजीत खडे पैर वहाँ चढ गया और उसने इस सरदार का सब इलाका जप्त कर अपने अधिकार मे कर लिया, तथा दो ग्राम उसके गुजारे को दे दिए। यहीं उसे खबर मिली कि कसूर के मुसलमान हाकिम ने विद्रोह खडा किया है, रणजीत के सिपाहियों को मार डाला है और एक ग्राम भी लूट लिया है। रणजीत ने फौरन ही सरदार फतह सिंह को उधर भेजा और फिर आप भी दलबल के साथ पीछे से जा पँहुचा। उधर से कसूर का हाकिम निजामुद्दीन भी बेखबर न था। उसने भी शत्रुओं के स्वागत की अच्छी तैयारी कर रक्खी थी। सिक्खो के पहुँचते ही खचाखच तलवारे चलने लगी। युद्ध-क्षेत्र में डँटा हुआ निजामुद्दीन स्वय अपने सिपाहियो को उत्साह देता हुआ लड रहा था। इधर से रणजीत और फतह सिंह दोनों एक सग मिल कर लड रहे थे। यद्यपि सिक्खों ने तलवार के हाथ खूब दिखाए पर पठानों ने भी बडी खूबी से मोरचा रोका, पर वे कहाँ तक लड सकते थे। जहाँ 'रणजीत और फतह' दोनों इकट्ठे मिल जाँय वहाँ फिर रण जीतने मे देरी किस बात की थी। अस्तु, अत को सिक्खों ने पठानो के दाँत खट्टे कर दिए, निजामुद्दीन भाग कर किले में जा घुसा और भीतर ही से तोपो द्वारा युद्ध करने लगा। पर इस बार भी रणजीत की तोपो ने रण जीता और शेरखाँ के किले का भुरकुस निकाल दिया। कहीं की दिवार फट कर गिर गई, कोई बुर्जी उड कर कहाँ चली गई, पता ही न था। सारे सिक्ख जवान किले मे धँस पडे तथा उन्होने जिसको सामने पाया उसे तलवार से भुट्टा सा सिर काट कर

अलग फेंक दिया। तात्पर्य्य यह कि किले में एक भी मुसलमान न बचा। केवल निजामुद्दीन महाराज की शरण आया और अपराध की क्षमा माँगने लगा। पहले तो सिक्खो ने कसूर शहर को खूब लूटा, फिर हाकिम साहब के हाथ पैर जोड़ने से नरम खाकर महाराज ने लूट बंद करने की आज्ञा दी और निजामुद्दीन से बहुत सा द्रव्य तथा नजराना लेकर और अपने अधीन रहने की प्रतिज्ञा करवा कर वह लाहौर लौट आया। इस मुहिम से वापस आकर उसने सुना कि दुआबा जलंधर का एक बड़ा रईस मर गया है। रणजीत ने तुरत ही उसका इलाका जप्त कर सरदार फतह सिंह को दे दिया तथा उस रईस की विधवा को कुछ द्रव्य देकर संतुष्ट कर दिया। यहाँ से निपट कर अपने हितैषी फतह सिंह को संग ले मन बहलाने और सैर सपाटा, शिकार इत्यादि का आनंद लेने के लिये महाराजा कपूरथले की तरफ गया, पर वहाँ पहुँचते ही यह पता लगा कि काँगड़े के राजा संसार चंद्र ने फिर उत्पात करना शुरू किया है। यहाँ देरी क्या थी। खबर के मिलते ही रणजीत उधर ही सेना चढ़ा ले गया और बात की बात में उसने होशियारपुर पर दखल कर लिया। संसार चंद्र भय से पहाड़ों में जा छिपा। रणजीत को और भी अच्छा मौका मिला। उसने सहज ही में राजा के और भी दस पाँच इलाके अधिकृत कर लिये और राह में कई पहाड़ी रजवाड़ों से नजराना वसूल करता हुआ वह लाहौर वापस आया। पर चैन क्यों मिलने लगी थी। कुछ ही दिन बाद यह खबर मिली कि कसूर के हाकिम निजामुद्दीन के छोटे भाई ने उसे मार डाला है और वह आप हाकिम बन

बैठा है तथा दीनमुहम्मदी का झंडा खडा कर सारे लडाकू मुसल-मानों को बटोर रहा है। रणजीत ने पुन फतह सिंह को सग ले कर कसूर पर चढाई की। अब की बार हाकिम कसूर बडी चतुरता से लडा। वह कभी सामने होकर नहीं लडता था। इधर उधर से छिप कर दिन या रात को जब अवसर देखता सिक्खो पर छापा मारता और कभी किले मे जा छिपता, कभी खोजने पर पता भी न लगता की कहाँ है। इस छल पेच के कारण अब की बार सिक्खो को बडी परेशानी उठानी पडी और कई महीना तक यह मामला तय न हुआ। पर रणजीत ने अंत को एक अवसर खोज कर मियाँ साहब को गिरफ्तार कर ही लिया और फिर बहुत कुछ हाथ जोडने और गिडगिड़ाने पर उससे बहुत सा रुपया और रत्न जवाहिरात लेकर अपनी अधीनता स्वीकार करवाई और विजय का डंका बजाता हुआ वह अपने घर वापस आया।

कुछ दिनो तक घर रह कर उसने फिर दूसरी चढाई की तैयारी की। अब की बार उसने मुलतान पर चढाई करने का मनसूबा बाँधा। उसके मित्रो को जब यह समाचार विदित हुआ तो सबो ने एक स्वर से महाराजा के इस प्रस्ताव का विरोध किया और कहा कि "मुल्तान पर चढाई करना कुछ खिलवाड नहीं है। वहाँ के अफगान बडे कट्टर हैं और किला दुर्भेद्य है तथा आप की सेना भी अभी कसूर के मुहिम की थकावट अच्छी तरह नहीं उतार सकी है।" पर महाराजा ने किसी की एक न सुनी और एक बार भाग्य की परीक्षा करना ही निश्चय किया और अपनी वीर सेना के सग तत्काल ही मुलतान की ओर कूच

कर दिया। यद्यपि रणजीत के साथी और स्वयम उसे भी यह मालूम न था कि उसका नाम इन्हीं थोड़े दिनों की कई एक मुहिमों के कारण इतना फैल गया है, पर बात तो वास्तव में यह थी कि इस समय उठते हुए नवयुवक वीर रणजीत का नाम सुनते ही बहुतेरों के जी दहल जाते थे और सब यही मनाते थे कि कहीं "यह बला हमारे सिर पर कभी न आ घहरावे।" अस्तु जब मुल्तान के हाकिम ने सुना कि लाहौर का महाराज रणजीत सिंह अपने लड़ाकू सिक्खों के साथ मुल्तान पर चढ़ा आ रहा है तो उसके हाथ पैर फूल गए और वह अपनी कुछ सेना लेकर मुल्तान से बाहर तीस कोस आगे चला आया और उसने महाराज के पास फौरन सुलह का पैगाम भेज दिया। रणजीत ने बहुत सा रुपया नजराना लेकर वापस जाना स्वीकार किया तथा उसके मन में यह बात भी समा गई कि वास्तव में उसके विचार से कहा अधिक उसका आतंक लोगों पर छा गया है और इस विश्वास ने उसकी हिम्मत को और भी बढ़ाया, क्यो कि मुल्तानवाले मामले मे उसे सख्त मुकाबले का खटका था पर वह हजारों रुपया पोटली बाँध कर मंगल गाता घर आया। घर आकर उसने भंगी मिसलवालों के फिर कुछ उत्पात करने के समाचार सुने। इस लिये अब की बार उनका समूल नाश करने के लिये सरदार फतह सिंह के साथ अमृतसर मे उनके किले लोहगढ को उसने जाकर घेरा। यद्यपि किले का शासन केवल गुलाब सिंह भंगी की विधवा रानी करती थी और उसका एक नाबालिक लड़का था, पर इन्होंने किले का फाटक बंद कर वह आग बरसाई कि रणजीत

गुरदासपुर का इलाका भी उसके अधीन हो गया था। इससे महाराज का बल बहुत बढ गया। अस्तु, इस जीत की खुशी में उसने अमृतसर के गुरुमंदिर मे कडाह प्रसाद का भोग लगवा कर कई सहस्र रुपये भेट किए और अमृतसर मे स्नान कर यथाविधि ग्रंथ साहब की पूजा की और सिपाहियों को इनाम बाँटा। यहाँ से वापस आने पर स० १८६० विक्रमी में महाराज ने दसहरे का त्यौहार बडी धूम धाम से मनाया। सारी फौज की क़वायद ली। सिपाहियों की वर्दी, हथियार और सेना की हरेक चीज को सावधानी से देखा और उचित कमी को पूरा करने का तत्काल आदेश दिया। सब सिपाहियों ने महाराज के सामने नजर गुजारी तथा महाराज ने कई प्रकार के खेल से अपनी सेना के बहादुर सिपाहियों के बल की परीक्षा की और अपने हाथों से सब को इनाम बाँटा। 'सत्य श्री अकाल पुरुप की जय', 'महाराज रणजीत सिह बहादुर की जय' इस आनद ध्वनि के बीच यह उत्सव बडी शांति के साथ समाप्त हुआ।

सन १८६० विक्रमी के दसहरे का उत्सव मनाने के बाद महाराज ने झग पर चढाई की। झग का हाकिम एक मुसलमान था और उसके अत्याचारो से तग आकर उसकी हिंदू प्रजा महाराज के आने की प्रतीक्षा कर रही थी और हर तरह से उनकी सहायता के लिये भी तैयार थी। अस्तु, महाराज बेखटके झग पर चढ गए। थोडी सी लड़ाई के बाद झग का हाकिम भाग कर मुलतान चला गया और सिक्ख सेना ने झग नगर मे प्रविष्ट होकर खूब लूट पाट मचाई। यद्यपि महाराज

के सिपाहियो का भी जी मान गया। इधर से भी दनादन तोपे छूट रही थी। पर गुलाव सिंह की विधवा पत्नी की हिम्मत सराहनीय थी। वह स्वयम् किले मे घूम घूम कर गालदोजो को उत्साहित करती थी और मोर्चे का लक्ष्य वतलाती थी। अस्तु, दो दिनों तक इस वीरागना ने वडी तेजी से मुकावला किया पर तीसरे दिन रणजीत सिंह की प्रवल तोपों ने किले की एक ओर की दीवार उडा दी और उसकी सेना लोहगढ के किले मे प्रविष्ट हो गई। इसी समय मौका पाकर गुलाव सिंह की विधवा स्त्री अपने नावालिग पुत्र का हाथ पकड़ सन्नाटे में किले के वाहर हो गई। सध्या का समय था, शीत ऋतु का प्रावल्य था और उपर से मूसलाधार वृष्टि हो रही थी। इस अवस्था में माता और पुत्र दोनो खडे खडे एक वृक्ष के नीचे भीग रहे थे। उधर से रणजीत का कोई सरदार चला आ रहा था। उसने इन अनाथो की दशा देख कर दया की और इन दोनो को वडी खातिर से अपने घर ला उतारा। जव उसे मालूम हुआ कि यह मृत सर्दार गुलाव सिंह भगी का परिवार है तो उसने महाराज के पास जा कर इन लोगों की करुणाजनक अवस्था सुनाई और सिफारिश कर इन लोगों के गुजारे के लिये कुछ जागीरे दिलवा दीं। इस तरह प्रवल भगी मिसल का अत हुआ। जो किसी समय आधे पजाव के स्वामी थे, उनके मिसल का वशधर रणजीत की सामान्य करुणा भिक्षा पर दिन विताने लगा। इधर रणजीत ने इस विजय का वड़ा आनद मनाया क्योंकि अमृतसर के दखल मे आ जाने से करीव सौ के और भी छोटे छोटे किले और जालधर तथा

गुरदासपुर का इलाका भी उसके अधीन हो गया था। इससे महाराज का बल बहुत बढ गया। अस्तु, इस जीत की खुशी मे उसने अमृतसर के गुरुमदिर में कड़ाह प्रसाद का भोग लगवा कर कई सहस्र रुपये भेंट किए और अमृतसर मे स्नान कर यथाविधि ग्रथ साहब की पूजा की और सिपाहियों को इनाम बॉटा। वहॉ से वापस आने पर स० १८६० विक्रमी में महाराज ने दसहरे का त्यौहार बड़ी धूम धाम से मनाया। सारी फौज की कवायद ली। सिपाहियों की वर्दी, हथियार और सेना की हरेक चीज को सावधानी से देखा और उचित कमी को पूरा करने का तत्काल आदेश दिया। सब सिपाहियों ने महाराज के सामने नजर गुजारी तथा महाराज ने कई प्रकार के खेल से अपनी सेना के बहादुर सिपाहियों के बल की परीक्षा की और अपने हाथो से सब को इनाम बॉटा। 'सत्य श्री अकाल पुरुष की जय', 'महाराज रणजीत सिह बहादुर की जय' इस आनद ध्वनि के बीच यह उत्सव बडी शाति के साथ समाप्त हुआ।

सन १८६० विक्रमी के दसहरे का उत्सव मनाने के बाद महाराज ने झग पर चढाई की। झग का हाकिम एक मुसलमान था और उसके अत्याचारों से तग आकर उसकी हिंदू प्रजा महाराज के आने की प्रतीक्षा कर रही थी और हर तरह से उनकी सहायता के लिये भी तैयार थी। अस्तु, महाराज बेखटके झग पर चढ गए। थोडी सी लड़ाई के बाद झग का हाकिम भाग कर मुलतान चला गया और सिक्ख सेना ने झग नगर मे प्रविष्ट होकर खूब लूट पाट मचाई। यद्यपि महाराज

ने इस अवसर पर सिक्खों को लूट पाट करने से मना कर दिया था पर विजयोन्मत्त सेना ने उनकी एक न मानी और खूब मन मानी की। इससे रणजीत समझ गया कि उसे कैसे स्वभाव के आदमियों से काम लेना है। अब तो सेना क मन का चढाव उतार देखकर ऐसे मौके पर वह कोई आदेश देता था जिसमें उसकी बात हलकी न पडे। मुल्तान के हाकिम ने हाश्मि झग को इस अवसर पर किसी प्रकार की सहायता न दी। अस्तु, विवश हो उसे फिर झग लौटना पडा और छ लाख सात हजार रुपया वार्षिक कर देना स्वीकार कर उसने महा राज लाहोर की अधीनता स्वीकार की। यहाँ से निपट कर रणजीत 'ओज' नामक एक इलाके पर चढ गया और वहाँ से भी उसने कई सहस्र रुपए नजराने के वसूल किए तथा राह में और भी जो सब छोटी छोटी पहाडी रियासतें पडती थीं सब से नज राना वसूल करता हुआ सहर्ष लाहौर वापस आया। थोडे ही दिनों के बाद यह खबर आई कि काँगडे के राजा ससार चद्र ने पुन होशियारपुर और निजवाडा ले लिया है। रणजीत इस सवाद के सुनते ही खडे पैर होशियारपुर पर चढ गया और ससार चद्र को भगा कर उसने पुन दोनों स्थान अधिकृत कर लिए। यह घटना सवत् १८६१ विक्रमी की है। यहाँ से वापस आकर महाराज अमृतसर हरमदिर जी के दर्शनों को गए, जहाँ इनकी सारी सेना भी इनके साथ थी। दरबार साहब की भेट पूजा करने के बाद यहीं उसने अपने अधीनस्थ सरदारों को निम्नलिखित उपाधि, अधिकार और जागीरें दान की तथा कइयों को वीरतासूचक तमगे और तल्वारें भी दीं।

१—सर्दार हुकुम सिंह को तोपखाने का अफसर बनाया तथा दो सो सवार उसके अधीन किए।

२—सर्दार गौस खाँ मुसलमान को दो हजार सवारो पर तैनात किया।

३—सर्दार हरिसिंह नलुवा को जो महाराज का खास खिदमतगार था, सर्दार की पदवी दान की और आठ सौ पैदल उसके अधीन किए। इस सर्दार ने आगे चल कर बडा नाम किया और काबुल तक मे विजय का डका बजाया। यह जाति का खत्री था। 'नलुवा' इसकी अड्ड थी।

४—सर्दार दलसिंह मजीठिया को चार सौ सवारो का अफसर बनाया।

५—रोशन और शेख अब्दुल को जो दोनो रुहेले पठान थे दो दो हजार सवारो का अफसर बनाया।

६—सर्दार मलका सिंह को सात सौ सवारो के साथ रावलपिंडी में तैनात किया।

७—सर्दार नवरा सिंह को चार सौ सवारों के साथ परगने खिलतखास मे रक्खा।

८—सर्दार इतर सिंह को पाँच सौ सवारो पर रिसालदार बनाया।

९—सर्दार मत सिंह को भी पाँच सौ सवारो पर रिसालदार बनाया।

१०—सर्दार किरण सिंह को एक हजार सवारो का नायक किया।

११—सर्दार निहाल और वाज सिंह को पाँच सौ सवारों का नायक बनाया और कुछ जागीरें भी प्रदान कीं।

इसके अलावा, सर्दार जस्सा सिंह, चेत सिंह, भाग सिंह और साहब सिंह अधीनस्थ सर्दारों से यह प्रतिज्ञा करवाई कि वे लोग महाराज की अधीनी मे अपनी अपनी जागीरो का आप प्रबध करेंगे और अवसर पडने पर चार चार हजार सिपाहियों से महाराज की सहायता करेगे तथा साधारण नजराना इत्यादि दिया करेंगे, और कन्हैया मिसलवाले सात और नक्की मिसलवाले चार हजार सिपाहियों से समय पर महाराज लाहौर की सेवा के लिये हाजिर रहेंगे।

यों लाहोर पर अधिकार करने के चार ही वर्ष के भीतर रणजीत का प्रताप बहुत बढ गया और सब लोग इसका लोहा मानने लगे। इस इतज़ाम से निवट कर महाराज ने जब सुना कि आज कल दर्बार काबुल की अवस्था घरेलू झगडो के कारण बहुत खराब है, तो उन्होने चेनाब नदी के आस पास और किनारे के जितने इलाके काबुल के अधीन थे सब दबा लिए और वहा अपने गवर्नर मुकर्रर कर दिए। यहा से आकर वे हरद्वार स्नान करने गए और स्नान ध्यान, दान पुण्य से निवट कर उन्होंने फिर से पजाब का एक दौरा किया और अब की के दौरे में काबुल के अमीर अहमदशाह ने पजाब मे जो जो इलाके दखल किए थे सब अपने राज्य मे मिला लिए। पूछनेवाला कौन था? जहाँ कोई जीता मरता मुसलमान हाकिम था भी उसने या तो भाग कर जान बचाई या, महा-

राज की अधीनता कबूल की। इधर से निबट कर महाराज रणजीतसिंह ने फिर मुलतान की ओर निगाह फेरी। अभी मुलतान बीस कोस था कि इसी बीच में वहा के हाकिम ने आकर कर जोड भेट की और दस हजार रुपया नजराना दे महाराज को लाहौर वापस किया। इस मौके पर रणजीत ने हाकिम मुलतान पर ज्याद दवाव न डाल कर जल्दी ही थोडा सा नजराना लेकर लाहौर वापस आना क्यों उचित समझा, इसका कारण यह था कि लाहौर से यह सवाद आया कि "महाराज होलकर अगरेजों से हारकर महाराज की शरण आया है।" सो उसका उचित प्रबंध करने के लिये महाराज ने खडे पैर लाहौर जाना उचित समझा। होल्कर से तथा अगरेजों से महाराज ने कैसा बर्ताव किया, यह अन्यत्र एक अध्याय में लिखा जायगा।

होलकर का मामला तय करने के बाद महराज ने सन् १८६२ की होली का उत्सव बडे धूम धाम से मनाया। सुगधित अबीर गुलाल और कुकुम केशर की कीच मीच मच गई। हाथी पर महाराज की सवारी निकली। सैकडों मन अबीर गुलाल उड गए जिसमें हजारों तोले चमकी सलमा काट काट कर मिलाए गए थे जो गुलाल उड़ते समय सूर्य्य की किरणों मे अपनी सुनहरी चमक से दर्शकों की आँखे चौंधिया देते थे। जिस समय गुलाब के लाल बादलों में जरदोजी की यह चमकिया चमकतीं तो ऐसा भान होता था मानो आज प्रकृति देवी ने लाल जरदोजी बूटी की ओढनी ओढी है। सब्री चमकी और सलमे से मिला हुआ यह गुलाल जो गरीब गुरबे

धरती पर से बटोर कर ले गए, उससे वे दस दस पाच पाच रुपए पा गए। योंही सानद होली का उत्सव समाप्त कर, वसत ऋतु के आरभ मे पुन नवीन उत्साह के साथ महाराज ने अपने राज्यविस्तार का कार्य्य आरभ किया। सन् १८६२ के वैशाख मास मे महाराज कटरास सिध की ओर गए और वहाँ सिधु नद मे स्नान, दान पुण्य करके उन्होंने अपने अस्त्र सम्हाले और सिध के किनारे के तथा आस पास के सब इलाकों पर अधिकार कर लिया, पर यहा से लौट कर आते समय महाराज की तबियत बहुत बीमार हो गई और कई दिनों तक बडा कष्ट रहा और इसी लिये मीयानी के इलाके में वे कुछ दिन ठहरे रहे। जब तबियत कुछ ठिकाने आई तो वे सीधे लाहौर वापस आए और वर्ष भर तबियत कमजोर रहने के कारण कहीं बाहर नहीं गए। लाहार ही में रह कर वे राज्य की आमदनी और प्रजाओं पर कर इत्यादि लगाने का उचित प्रबध करते रहे तथा शाहजहाँ बादशाह का बनावाया हुआ लाहौर मे जो एक बडा सुदर बाग 'शलामार बाग' के नाम से प्रसिद्ध था उसकी मरम्मत करवाने मे उन्होंने अपना समय लगाया। बीमारी की हालत म शरीर निर्बल होजाने पर भी महाराज को खाली बैठना मुहाल था। हरदम किसी न किसी काम मे लगेही रहते थे। वर्ष भर बाद जब शरीर खूब चगा हो गया तो फिर तलवार उठाई। निशानिया मिसलवालों का इलाका जट्टा तथा कोटकपूरा छीन कर अपने राज्य मे मिला लिया तथा धरमकोट नामक एक और इलाका भी अधिकृत किया।

धरमकोट छीन कर फरीदकोट की रियासत पर भी महा-

राज ने हाथ मारना चाहा, पर राजा ने लाहौर सर्कार को नजराना इत्यादि देकर राजी कर लिया। एक और अवसर रणजीत के लाभ का अनायास आप उपस्थित हुआ। वह यह था कि रियासत नाभा और पटियाला के राजाओं में जो दोनों एक ही वश के थे, आपस मे मनमुटाव हो गया और धीरे धीरे यह वैमनस्य यहाँ तक बढ गया कि दो तरफा तलवारें खिच गई। जब यह नौबत देखी तो इन लोगो ने मामला निबटाने के लिये महाराजा लाहौर से दरखास्त की। यहाँ क्या देरी थी ? खबर मिलते ही रणजीत उधर रवाना हुए, पर जब तक पहुँचे पहुँचे तब तक इन दोनों रियासतो में एक छोटी सी लडाई भी हो गई। रणजीत ने आते ही युद्ध बद करवाया और समझा बुझा कर दोनो मे सधि करवा दी। बदले मे दोनों रियासतों ने महाराज लाहौर को भरपूर द्रव्य देकर बड़ी खातिर से बिदा किया। इसी मौके पर एक और किसी मुसलमान जागीरदार का इलाका जप्त किया गया और महाराज ने वह इलाका अपने मामा राजा झींध को दे दिया तथा अपने सेनापति गौसखा का इलाका तिहास जो ताल्लुका ब्यास मे था उससे लेकर अपने खास सेवक हुकुमचन्द को दिया और जगराव, जतघराला नामक दो इलाके और भी अपने मामा राजा झींध को दिए तथा नाभा और कई इलाके भी अपने मित्र सर्दार फतहसिंह के अधीन कर दिए। इन सब कामो को निबटा कर महाराज थानेश्वर (कुरुक्षेत्र) गए और वहा स्नान पूजा करके लाहौर वापस आए। लाहौर मे दिवाली का त्योहार बडी धूम धाम से मनाया गया। सारे

शहर में खूब रोशनी हुई और आतिशबाजी चली और बडे ठाठ-बाट से रात्रि के समय महाराज की सवारी निकली। हाथियो पर से मिठाई, लावे, बताशे और रुपए पैसे लुटाए जा रहे थे, जिससे सहस्रों दीन दरिद्र प्रजाओं के घर भी खासी दिवाली का उत्सव माना गया और सब महाराज की जयजयकार कर रहे थे। दिवाली का उत्सव सानद समाप्त कर महाराज श्रीज्वालामुखी देवी के दर्शनार्थ पधारे। महाराज अभी वहीं थे कि कागड़ेवाले राजा ससारचद के भाई ने आकर महाराज से भेट करने की इच्छा प्रगट की। महाराज ने सहर्ष उसे सामने लाने की आज्ञा दी। सामने आने पर महाराज ने बडी खातिर से उसका हाथ पकड कर बिठाया और पान इलायची देकर कुशल प्रश्न पूछा। वह बोला "आप कुशल प्रश्न क्या पूछते हैं ? इस समय हम लोगों की कुशल तो आपही के हाथ है। आपके सिवाय अब किसीका भरोसा नहीं है। आपही कुशल से रक्खे तो रहें नहीं तो मर मिटेंगे।" महाराज ने कहा—"क्यों, आप ऐसी निराशा की वाणी क्यो बोलते हैं, बात क्या है ? कुछ कहिए भी ?" इस पर वह बोला कि—"हाल यह है कि महाराज नैपाल का सेनापति अमरसिंह थापा, नैपाल से उतर कर पजाब मे आधमका है और सारे पजाबी पहाड़ी इलाको पर दखल जमाकर अब कोट कागडे पर भी चढ आया है, सो इस समय यदि आप सहायता करे तो जान बचे, नहीं तो हम लोग बर्बाद हो जायँगे। बदले में नजराना इत्यादि जो कुछ आप आज्ञा करेंगे उसके लिये हम तैय्यार हैं।" रणजीत ने उत्तर मे कागड़ेवाले को बहुत

कुछ ढाढस दिया और अपनी सेना को तैय्यार होने की आज्ञा दी। सो कुछ सेना और दो तोपों के साथ महाराज दो ही चार दिन मे काँगडे जा पहुँचे। जब सर्दार अमरसिंह थापा ने महाराज रणजीत सिंह के आने का समाचार सुना तो अपना एक दूत भेज कर महाराज को कहलाया कि—"जितना नजराना आपको कागडे के राजा से मिलने की आशा है, उससे दुगुना हम देंगे, आप इस मामले में कुछ दखल मत दीजिए।" पर महाराज लाहौर ने ऐसा विश्वासघात करने से साफ इनकार किया। इसके अतिरिक्त वे स्वय भी यह बात पसद नहीं करते थे कि सिक्खों के मुकाबले मे लड़ाकू और बलिष्टकाय गोर्खे पजाब मे आसन जमावें। इसलिये महाराज ने उस दूत से यही कहा कि "खैर इसी मे है कि तुम्हारा सर्दार एकदम पजाब से बाहर चला जाय, नहीं तो हम बिना चढाई किए नहीं मानेंगे। चौबीस घंटे के भीतर लडाई छेड देंगे।" जब नियत समय बीत गया तो महाराज ने फौरन तोपों पर पलीता रखवा दिया तथा अपनी सेना को चार्ज करने की आज्ञा दी। अब क्या था, दो तरफा दना दन गोलिया चलने लगीं। पर गोर्खे थोडी सी लड़ाई के बाद सुस्त पड गए। कारण यह था कि उनमे के कई सर्दार सिक्खों से विरोध करने के विरुद्ध थे। इस लिये उनकी सेना जी खोल कर नहीं लडती थी। इस पर अमर सिंह थापा बहुत बिगड़ा और उसने उनमें से दो एक सर्दारों को गोली मार दी। उन सर्दारों के सिपाही बिगड कर विद्रोही हो गए और गोर्खों में आपस ही मे मार काट होने लगी। दूसरे एक आपत्ति और आई।

गोर्खों मे हैजा फूट निकला। एक एक दिन में पचास पचास साठ साठ सिपाही मरने लगे। अब तो अमरसिंह बहुत घबराया। 'चौबेजी चले थे छब्बे होने, दूबे हो गए' सो वह रोता झींकता काँगडे का अवरोध छोड कर, महाराज के आगे नाक रगडता और कृपापूर्वक मर्ग मिलने की प्रार्थना करता हुआ नैपाल की ओर दुम दबा कर भाग ही गया। महाराज ने इस दैवी विपत्ति मे पडे हुए शत्रु पर दया की और उसे बेखटके निकल जाने दिया।

इस विपत्ति के टल जाने से राजा ससारचद ने बडा अहसान माना और बडी प्रतिष्ठा के साथ पचास हजार रुपया नगद महाराज के भेट किया और वह महाराज की घोडी के साथ पैदल चलता हुआ ज्वालामुखी तक पहुँच गया। महाराज काँगड़े से चले आए, पर गोर्खों से बेखटके रहने की मनसा से राजा काँगडे के इलाके नादौन मे उन्होंने अपने एक हजार सवार तैनात कर दिए जिन्हें गोर्खों की निगरानी की कडी आज्ञा थी। ज्योंही महाराज पहाड़ से उतरे तो उन्हें रानी महताब कुँवर के गर्भ से दो पुत्र होने का शुभ सवाद सुनाई दिया। महाराज ने बड़ी खुशी मनाई और एक का नाम शेर सिंह तथा दूसरे का तारा सिंह रक्खा। कुछ ही दिन बाद कसूर के हाकिम के फिर उत्पात मचाने का सवाद आया, उसकी हिमाकत यहाँ तक बढ गई थी कि सूबा मुलतान से मिल कर उसने लाहौर पर चढाई करने की तैयारी की। जब महाराज के पास यह सवाद पहुँचा तो वे क्रोध से लाल हो गए। उन्होने अपने मित्र फतहसिंह अहलूवालिया को बुला

भेजा और व्यास पार कर के अपनी प्रबल सेना के साथ वे कसूर जा पहुँचे और कसूर के बाहर के सब इलाकों को उन्होंने लूटपाट कर बर्बाद कर दिया। जब हाकिम कसूर ने सुना कि वज्र आ पहुँचा और पात होने ही वाला है तो उसके होश हवास जाते रहे और वह अपने भाई बंधो से सलाह करने लगा। कइयों ने सलाह दी कि कुछ नजराना दे पिंड छुड़ाओ पर कइयों की यह राय हुई कि अभी हाल ही में नजराना दे चुके हैं। योंही घड़ी घड़ी नजराना देते रहेंगे तो एक दिन बर्बादी नसीब होगी। बार बार कुत्ते की तरह दुम दबा दबाकर नजराना देने की अपेक्षा एक बार जी खोल कर लड जाना चाहिए। अपमान से जीने की अपेक्षा मृत्यु ही श्रेय है। अस्तु कसूर के हाकिम कुतुबुद्दीन ने नगर की मफीलों पर तोपें चढवा दी और लड़ाई छिड गई। इधर से महाराज लाहोर की तोपें भी आग उगल रही थी। दो दिन तक योंही दोतरफा गोलों की मार होती रही। तीसरे दिन अफगानो ने बड़ी तेजी से अग्निवृष्टि की और सिक्खो की बड़ी हानि हुई, पर महाराज के उत्साह देने से सब वीर मैदान मे डटे रहे और सुबह से शाम तक बराबर लगातार पूरी तेजी से आग बरसाते हुए शत्रुओं का उत्तर देते रहे। चौथे दिवस महाराज ने एकदम चाज करने की आज्ञा दी। अब क्या था अब तो हाथा मे नंगी तलवार लिए खालसा वीर प्रबल अग्निवृष्टि की कुछ भी परवाह न कर मुसलमानी सेना मे धँस पडे और उन्होंने जा मुसल्लो को आडे हाथों लिया। यद्यपि पहले आगे बढने में महाराज के कई सौ सिपाही एकबार ही उड गए पर वीर सिक्ख एक

बार आगे बढ़ कर पीछे पीठ फेरना नहीं सीखे थे। अस्तु तलवार खींचे और 'अकाल पुरुष' की जयजयकार करते हुए वे अफगानों की खोपड़ी पर जा पहुँचे और खीरे ककड़ी की तरह शत्रुओं को तराशने लगे। अफगानों ने भी बहुतेरा ज़ोर मारा और कई बार वे "अल्ला हो अकबर" के शब्द से आकाश गुंजायमान करते हुए आगे बढ़े पर केवल खालसा वीरों की तलवारों से शहीद होने के लिये। अब तो लड़ते लड़ते अफगान सेना शिथिल हो गई और सोचने लगी कि "ये सिक्ख क्या हैं बला हैं, खुदा इनसे जान बचाए तो खैर।" यही सोचते हुए लोग भाग कर नगर म जा घुसे और नगर के सुदृढ़ फाटक को बंद कर भीतर से तोपों द्वारा लड़ते रहे। महाराज ने नगर अवरोध करने की आज्ञा दी और चारों ओर ऐसा घेरा डाल दिया गया कि एक पक्षी का भी भीतर जाना मुहाल हो गया। अफगान लोग तोपों से लड़ते और जो कुछ भीतर मिलता खा पीकर गुजारा करते रहे। दो मास तक इन्होंने लड़ाई जारी रक्खी और रसद पानी चुक जाने पर इन्होंने पशुओं को मार मार कर खाया पर किले का फाटक नहीं खोला। इधर सिक्खों की प्रबल तोपों की लगातार मार ने नगर प्राव की दीवार गिरा दी थी और खालसा सेना नगर पैठने की तैयारी करने लगी, पर इसके पहले महाराज ने यह आज्ञा प्रचार करवा दी कि "कसूर की जो प्रजा खाली हाथ बाहर जाना चाहे चली जाय, किसी की रोक टोक नहीं की जायगी, पर हाँ कोई एक तिनका भी अपने संग नहीं ले जाने पावेगा।" इससे बेचारी प्रजा बड़ी दुखी हुई। बाप बेटे को

छोड कर भाग गया। पति ने स्त्री को नहीं पूछा, कितनी ही स्त्रियों ने आत्मघात कर लिया और कितनी ही सुंदर युवतियों को सिक्खों ने अपने अधीन कर लिया, और मनमाना कसूर नगर को लूटा पाटा और उजाड दिया। जिस मकान में नव्वाब जा छिपा था, उसे गिराने के लिये भी सिक्खों ने तोपें लगा दीं, तब तो बडा हताश हो कर वह कर जोड महाराज के चरणों में जा पडा। महाराज ने उसका हाथ पकड कर बडी प्रतिष्ठा से बैठाया और आप किले के भीतर जा कर नियमपूर्वक सब माल असबाब, रत्न जवाहिर खजाना, अस्त्र शस्त्र सिलहखाना सब देख भाल कर अपने अधीन किया। अबतक नव्वाब साहब बराबर हिफाजत मे रहे। महाराज को इसके अलावा बहुत से हाथी, उम्दा उम्दा अरबी घोडे और कई अच्छे शीघ्रगामी ऊँट भी हाथ आए। रत्न जवाहिर के सिवाय लखों रुपए का पशमीना शाल दुशाले भी हाथ आए। सेना के सब सिपाही भी लूट के माल से तरबतर हो गए। ऐसा कोई सिपाही न था जिसकी जेब न भरी हो। अस्तु यद्यपि इस युद्ध में सिक्खों को भरपूर मेहनत करनी पडी थी किंतु इनाम भी उन्हें भरपूर ही मिला और सब संतुष्ट हो गए। हाकिम कसूर का घराना पुराना था, इस कारण लूट मे सिक्खों के हाथ बहुत कुछ आया। कसूर के इलाके के सिवाय इलाका चुन्निया और खडिया भी जो इसी के अधीन थे, महाराज के कब्जे मे आए। महाराज ने सब पर दखल जमा कर ममदूट नाम का एक इलाका जो सतलज के पार था नव्वाब के गुजारे के लिये छोड दिया। इस विजय

के आनन्द में रणजीत ने लाहौर आ कर एक आम दर्बार किया और जिन जिन सर्दारों ने बहादुरी दिखाई थी, सबों को यथा-योग्य खिल्लत बाँटी तथा नगरभर में रोशनी और दिवाली, तथा नाचरंग, जल्से कर के खूब खुशी मनाई गई। हर एक सिपाही परस्पर खाता पीता मिलता जुलता और हँसता बोलता नगर में घूमता हुआ उत्सव मना रहा था। आज सबों को बिल्-कुल छुट्टी थी। दो महीने की मार काट और अग्निवर्षा से छुट्टी पा कर और प्रबल शत्रु को परास्त कर उसी की लूट के माल से गुलछर्रे उड़ाते हुए आज सिक्ख सिपाही मोछों पर ताव दिए और दाढ़ी फटकारे, तथा तिरछी पाग सँवारे हाथों में हाथ दिए नगर की दिवाली की शोभा देखते हुए घूम रहे थे। तात्पर्य यह कि इस अवसर पर सबों ने जी खोल कर खुशी मनाई और नव्वाब कुतुबुद्दीन सतलज पार ममदूट के इलाके की एक झोपड़ी में बैठा हुआ आँसू बहा रहा था। संसार की यही गति है। कहीं बरात जाती है और कहीं शव! कहीं घोड़ी कहीं काठ की घोड़ी! यही हाल सर्वत्र है। यही सिक्ख जवान जो आज ऐसे फूले फूले फिर रहे हैं, इन्हें भी कभी सिर पर हाथ रख कर रोना पड़ेगा। पर परिणाम को कौन सोचता है? आज खा पी लो मौज कर लो। कल देखा जायगा। यही तो संसार की गति है। अस्तु दो ही एक दिन में यह आनंद उत्सव समाप्त हो गया और फिर रणसाज सजने की आज्ञा हुई। महाराज को यह खबर लग चुकी थी कि हाकिम कसूर के सख्त मुकाबला करने का कारण हाकिम मुलतान की भीतरी सहायता थी। अस्तु महाराज

ने इधर से निवट फौरन ही मुलतान पर चढ़ाई की तैयारी की। पहले तो वे अमृतसर में दर्बार साहब गए और श्रीहरि मंदिर जी में पूजा अर्चा कर के उन्होंने बहुत कुछ चढ़त चढ़ाई और फौज को अच्छी तरह ताना तगड़ा होने के लिये और भी पंद्रह दिन तक आराम करने दिया। फिर नवीन बल और नए उत्साह से वे मारामार मुलतान जा पहुँचे। वहाँ पहुँच कर सर्दार फतह सिंह की मारफत नवाब मुलतान को यह कहला भेजा कि "देखो, पहले तो तुमने झंग के अमीर को शरण दे कर हमें चिढ़ाया और फिर हाकिम कसूर को सहायता दे कर तुम हमसे शत्रुता करने में भी जरा नहीं हिचके, इसलिये अब एक वर्ष का खजाना और जुर्माना तथा फौज के यहाँ आने का कुल खर्च फौरन अदा करो नहीं तो खैर नहीं है।" नव्वाब ने जवाब में कहला भेजा कि "हजूर मालिक हैं, मैं आपका अदना तावेदार इतनी हिमाकत कभी नहीं कर सकता कि हाकिम झंग को शरण देकर आपको नाहक चिढ़ाता। हाँ, वह जब मेरे इलाके में भाग कर आया तो मैंने उसे गिरफ्तार नहीं किया, क्यों कि इस बारे का कोई परवाना हजूर की तरफ से मुझको नहीं आया था, कसूरवाले मामले में मैं बिलकुल बेकसूर हूँ। मैंने हरगिज हाकिम कसूर की मदद नहीं की है, यह सब खबर आपको किसी ने झूठी पहुँचाई है। इस लिये मैं बिल-कुल बेकसूर हूँ। बाकी रहा आपका सालाना खजाना सो मैं देने के लिये तैयार हूँ। आपका भेजा हुआ एक अदना सा सिपाही भी आता तो ले जा सकता था। आपको तकलीफ करने की कोई जरूरत नहीं थी। पर नजराना और फौज के

खर्च की वावत में इस वक्त कुछ भी नहीं दे सकूँगा क्योंकि खजाने ही का रुपया देने मे मुझे वड़ी मुशकिल पडेगी, फिर और रुपया क्योंकर जुटा सकता हूँ, सो हजूर मुझे माफ करें और खजाने का रुपया ले कर लाहौर वापस जावें।" उत्तर मे महाराज अपने पहले सवाल पर दृढ रहे। पर नव्वाव हर वार यही कहता रहा कि "मेरे पास इस समय और रुपया नहीं है, दूँ तो कहाँ से दूँ।" तव तो महाराज ने चिढ कर अपनी सेना को चढाई करने की आज्ञा दे दी। सिक्खों की चढाई का समाचार सुनते ही मुलतान की प्रजा घर द्वार और जी छोड भागने लगी तथा नव्वाव ने किले का फाटक वद कर लिया। सारे नगर मे कोहराम मच गया और लोगों के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। कुछ वुद्धिमान वूढे रईस सोच विचार कर नव्वाव के पास गए और वोले कि "यह क्या आफत आपने वुला ली, इसका कुछ प्रतिकार तो करना चाहिए या सव को कसूर की नाईं वर्वाद करवाइएगा।" नव्वाव बोला "मैं क्या करूँ? यह आफत मैंने नहीं वुलाई, तुम लोगो की वदनसीवी ने वुलाई है। वह रुपया माँगता है। मेरे पास उतना रुपया नहीं है, फिर मैं क्या करूँ।" इस पर रईसो ने सलाह कर के कहा कि—"चाहे जो हो, इस वला का मुँह काला कर के टाल देना ही अच्छा है। कुछ आप दीजिए और कुछ हम लोग देवें। इस प्रकार से दे ले कर सिक्खो को वापस कर दो।" अत को वहुत कुछ सलाह वात के वाद पचास हजार रुपया नगर के रईसों ने अपने मे चदा कर के एकत्र किया और पचास हजार नव्वाव मुजफ्फर खॉं ने अपने पास

से निकाला और यह एक लाख रुपया ले कर नगर के रईस लोग महाराज की सेवा में गए और उन्होंने उक्त द्रव्य उनके आगे रख कर जोड वापस जाने की प्रार्थना की। महाराज ने बूढे बूढे रईसो की विनती स्वीकार की और एक लाख रुपया ले कर सेना को मोरचा छोड देने की आज्ञा दी। यहाँ से मोर्चा उठा कर महाराज ने नव्वाव भावलपुर की ओर मुँह फेरा। महाराज के आने का समाचार सुनते ही वह बहुत डरा और उसने अपना दूत भेजकर महाराज की कृपादृष्टि चाही और आज्ञा मानने का वचन दिया। महाराज ने उससे पूरा नजराना वसूल किया और अपनी अधीनता स्वीकार करवा कर अपने दीवान फकीर अजीजुद्दीन की मारफत उसे खिलत भेजी। उसने बडी खातिर से फकीर अजीजुद्दीन का अपने दर्वार मे स्वागत किया और बड़ी प्रशसा तथा प्रतिष्ठा करते हुए महाराज की दी हुई खिलत भरे दर्बार मे धारण कर अपने को धन्य माना। यहाँ से वापस आकर महाराज ने रणसाज का फिर से नवीन प्रबध किया। बहुत सी नई तोपें ढलवाई गई जिनमें दो तोपे बहुत बडी थीं। कहते हैं कि इनमे से बारह बारह मन के गोले दागे जाते थे, जिनके दगने से स्त्रियों के गर्भपात हो जाते थे। इसके सिवाय एक बदूक बनवाने का भी कारखाना खोला गया जहा नवीन से नवीन नमूने की बदूके भी बनने लगीं। इस काम पर महाराज ने खोज खोज कर अच्छे अच्छे कारीगर नौकर रक्खे थे। यह सब इतजाम करके महाराज ने एक पहाड़ी इलाके अदीना नगर पर सेना भेजी, पर यह इलाका

उसकी सास सदाकुँवर का था। उसने जब अपने दामाद रणजीत की यह करतूत सुनी तो बहुत नाराज हुई और मनही मन डरी भी, पर महाराज को जब पता लगा कि यह मेरा सास का इलाका है तो उन्होंने वहां से फौज वापस मँगवा ली। पर बीबी सदाकुँवर के जी मे चोर पैठ गया और वह अब भीतर ही भीतर महाराज का अविश्वास करने लगी। महाराज का मन भी अपनी सास की तरफ से साफ न रहा और इस प्रबल चतुर औरत को बेकाम कर देने की घात मे भी देखते रहे, क्योंकि वे खूब जानते थे कि इस औरत के लिये किसी और को उभाड कर भारी फिसाद खडा करवा देना कोई मुशकिल वात नहीं है। अस्तु ऐसे सन्देहजनक कंटक को येन केन प्रकारेण दूर कर देना ही वे मंगलजनक समझते थे। पर एक तो वह उनकी सास थी, दूसरे उसकी बदौलत उन्होंने पहले पहल अपने कार्य्य मे सफलता पाई थी, इस लिये खुल्लम खुल्ला वे उस पर किसी प्रकार का अत्याचार नहीं कर सकते थे और 'साँप मरे न लाठी टूटे' ऐसे अवसर की बाट जोहते हुए चुपचाप बैठ रहे तथा उन्होंने उससे पूर्ववत स्नेह का व्यवहार ऊपर से जारी कर रखा। इधर पटियाले मे एक नया ही गुल खिला। वह यह था कि वहाँ के राजा और रानी दोनो का मनमुटाव यहाँ तक बढ गया कि आपस मे युद्ध की नौबत आ पहुँची। अत को रानी साहवा ने मामला निपटा देने के लिये महाराज को बुला भेजा। महाराज तत्काल ही सर्दार फतह सिंह और दीवान मोकमचंद के साथ उधर को रवाना हुए। राह मे कोट कपूरा के हाकिम के यहाँ ठहर कर

मुट्ठी गरम करते और भदौड़ तथा मलेरकोटला के हाकिमों से नजराना वसूल करते हुए सन् १८०७ ई० के सितंबर मास में पटियाले जा पहुँचे। रणजीत के वहाँ पहुँचते ही खलबली पड़ गई और रानी साहबा ने अछता पछता कर अपने पति से मेल कर ही लिया और एक मोती का बहुमूल्य कंठा और एक बहुत उम्दा तोप महाराज को नजराना देकर तथा हाथ पैर जोड़ कर वापस किया।

यहाँ से वापस आते हुए राह मे महाराज ने कुँवर किशन सिंह के इलाके नारायणगढ पर चढाई की। यद्यपि यह एक साधारण भूस्वामी था पर इसका किला नारायणगढ अपनी शानी नहीं रखता था। इस किले को लेने के लिये सिक्खों को बहुत परिश्रम करना पडा। तीन सप्ताह तक बराबर लड़ाई होती रही। इस बीच मे कुँवर किशनसिंह ने कई बार सिक्खो का मुँह फेर दिया था, पर अपने प्रबल सर्दार रणजीत की अधीनता में खाल्सा वीर जी तोड कर लडते थे और ऐसी तेजी मे लडाई हुई कि महाराज का एक नामी सर्दार फतह सिंह कलीयानवाला अपने चार सौ योद्धाओ के साथ खेत रहा। अंत को महाराज लाहौर की प्रबल तोपो ने वह आग बरसाई कि नारायणगढ का सुदृढ किला भस्म हो गया और महाराज ने नारायणगढ का इलाका दखल करके चालीस हजार रुपया नजराने पर सर्दार फतह सिंह अहलूवालिया को यहाँ का नायक बनाया। राह में बदनी, मरिदा और जीरा नाम के और भी कई इलाको को दखल करते और नजराना वसूल करते हुए महाराज लाहौर वापस आए। ये

सब इलाके फीरोजपुर जिले में थे। इसी समय में न्लेल-वालिया मिसल का सर्दार तारासिंह लावारिस मर गया। इसकी खबर लगते ही महाराज ने अपनी सेना उसके इलाके पर भेज दी, पर उस सर्दार की विधवा स्वय हाथ में तलवार लेकर लडी और उसने वे जौहर के हाथ दिखाए कि सिक्खों का भी जी मान गया, पर अत को उसे हार माननी पडा और वह सुकरचकियों के हाथ कैद हो गई। महाराज ने उसका सब इलाका किला और माल असवाव दखल कर लिया और उसके गुजारे के लिये कुछ पेंशन मुकर्रर कर दी। इसके बाद नोशेरा की जागीर पर भी महाराज का अधिकार हो गया और वहाँ से लौटते समय महाराज ने सतलज पार के सब इलाकों को जो उनके अधीन थे अपने मुख्य मुख्य सर्दारों में इस प्रकार बाँट दिए। दुआवा के सर्दारों का अस्सी हजार रुपया वार्षिक कर नियत किया गया तथा गोपालसिंह मन्त्री से तीस हजार। रणजीत सिंह मुनीमका से महाराज ने वीस हजार और सर्दार हरिसिंह से जिसके पास रोपड और व्यास के इलाके थे पद्रह हजार वार्षिक कर लेना निश्चय किया। यहाँ से वापस आकर सवत् १८६५ विक्रमी में महाराज ने एक ही धावे में पठानकोट का इलाका जीत लिया और वहाँ से वापस आकर राजा चवा की तरफ तलवार फेरी। राजा साहब ने अधीनता स्वीकार की और नजराना देकर पिंड छुड़ाया। बसूली के राजा ने भी बिना युद्ध ही आठ हजार रुपया नजराना देकर जान बचाई और महाराज को अपना सिरताज माना। इधर महाराज के नामी और शूरवीर दीवान

हुकुमचद ने भी सतलज पार के कई इलाकों पर चढाई करके नजराना वसूल किया और जिसने सीधी राह से नजराना नहीं दिया उसके इलाके पर अधिकार जमाकर उसे रियासत लाहौर मे मिला लिया। महाराज दीवानजी की इस सफलता से बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उन्हे इनाम मे जागीरे और खिलत दी। इसके बाद महाराजा ने पुन: एक बार पहाडी इलाकों का दौरा किया और किसी अदने से इलाकदार को भी नहीं छोडा। सब से नियमपूर्वक नजराना वसूल करके अपनी अधीनता स्वीकार करवाई। तात्पर्य्य यह था कि महाराज अपने काम मे छिद्र रहने देना पसद नहीं करते थे। जो काम करते एक सिरे से दूसरे सिरे तक पूरा सटीक करके तब छोडते थे। यही कर्म्मवीर पुरुषों का लक्षण है। "छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति।" पहले का एक छोटा छिद्र ही महा अनर्थ का कारण हो जाता है। बडे बडे रणपोतों को भी डुबा देता है। सो इस दौरे मे अपने अधीनस्थ सारे पहाडी राजाओ को अपनी आँखों मे देख भाल कर और सब को अपना आज्ञाकारी बना कर महाराज लाहौर वापस आए। लाहौर आकर महाराज ने एक आम दर्बार किया और अधीनस्थ सारे इलाकेदार, राजा और जागीरदार सर्दारो का बुला भेजा। सबों ने आकर महाराज के आगे सिर झुकाया और नजर पेश की। इस दर्बार मे स्यालकोट का सर्दार जीवन सिंह तथा गुजरात का साहब सिह ये दोनो नहीं आए। बस इनकी हिमाकत पर महाराज को बडा क्रोध आया और उन्होंने फौरन स्यालकोट पर चढाई कर दी। स्यालकोट म चार सर्दार शासन करते थे। इनमे के एक बूढे

सर्दार नत्थासिह् ने तीनो को वहुत कुछ समझाया कि "रण-जीत से लडना व्यर्थ है। अधीनता स्वीकार कर लो।" पर इन लोगो ने नहीं माना और किला वद कर लड़ाई ठान दी। एक सप्ताह् तक दो तरफा तोपो की मार होती रही। अत को महाराज की सेना ने विजय पाई और किले की दीवार तोड़ कर सर्दार जीवन सिह् को कैद कर लिया। अपने खैरख्वाह बूढे सर्दार नत्थासिह् को छोड कर महाराज ने सब का इलाका जप्त कर लिया तथा स्यालकोट पर अपने एक सर्दार को शासक नियत करके वे आगे बढे। आगे बढ कर महाराज ने गुजरात पर चढाई कर दी। गुजरात का सर्दार साहब सिह् हाथ जोडता हुआ नजराना लेकर सामने आया और उसने दरवार में उपस्थित न होने की क्षमा माँगी। यहाँ से चल कर अखनूर पर चढाई की गई। वहाँ के शासक नवाब आलम खाँ ने नजराना देकर अधीनता स्वीकार की। यह सब काम निपटा कर ज्यो ही महाराज लाहौर पहुँचे तो शेरपुरा की प्रजाओ ने उनके दर्बार मे आकर पुकार की कि-"हमारे शासको ने हमे तग कर रक्खा है। आप कृपा कर उनके जालिम पजा से हमे छुडाइए।" अस्तु, इन लोगो के विनय करने से महाराज ने शेरपुरे पर अधिकार जमाना निश्चय किया और अपने बडे पुत्र कुँवर खड्गसिह् को चार हजार सेना के साथ शेरपुरा पर चढाई करने को भेजा। यहाँ के शासक ने किले का फाटक वद करके कई दिनों तक बडी मुस्तैदी से सिक्खो के आक्रमण को रोका, पर अत को रणजीत की सदा विजयी प्रबल तोपो ने किले की दीवार ढहा ही दी और यहाँ के सर्दार आर्वल सिह्

और अमीर सिह् कुँवर खड्गसिंह के हाथ बंदी हुए। महाराज ने शेखपुरा का सारा इलाका जप्त करके अपनी पटरानी कुँवर खड्गसिह् की माता महताव कुँवर को दान कर दिया।

इन्हीं दिनों अमृतसर मे वडा सुदृढ किला वनवाया गया। इस किले का नामकरण गुरु गोविंद साहव के नाम पर गोविंद गढ रक्खा गया। इस किले को अपने राज्य का मुख्य रक्षा स्थान वनाने के अभिप्राय से महाराज ने इसके वनवाने में वडी सावधानी और वुद्धिमानी से काम लिया। कई तह सगीन मजबूत दीवारो की वनवा कर चार वडी वडी जगी तोपे सफीलों पर चढवाई ओर वीस सहस्र सुसज्जित सेना के वहाँ सर्वदा रहने की आज्ञा दी। इसके वाद मुल्तान से नजराना आने मे विलम्ब होता देख कर महाराज ने अपने कई नामी सर्दारो को कुछ सेना देकर नजराना वसूल करने के लिये भेजा। इनके जाते ही नवाव मुजफ्फर खाँ ने वाकी नजराना देकर पीछा छुडाया। इधर दीवान हुकुमचद जिला दुआवा के सर्दारो से नजराने मे छ लाख रुपए वसूल कर लाए, जिससे महाराज वहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने दीवानसाहवको वडाभारी सिरोपाव और पारितोषिक देकर उनका सम्मान वढाया। इसके वाद सन् १८६६ विक्रमी मे यह सवाद आया कि नैपाल का सर्दार अमर सिह् थापा पुन अपने गोर्खों के साथ पजाव मे आ धमका है और काँगड़े का किला घेर कर राजा ससारचद पर दवाव डाल रहा है। राजा ने रणजीत सिंह को वडी विनती से अपनी सहायता के लिये आने को लिखा। जव महाराज अपनी सेना के साथ काँगड़े पहुँचे तो राजा ससारचद ने एक वड़ी मूर्खता का

काम किया। वह शत्रु से डरा हुआ था, उसकी बुद्धि ठिकाने नहीं थी। रणजीत से तो उसने यह कहा कि "अन की गोरखों को पहाड से निकाल दीजिए तो मैं कॉंगडे का किला आप की भेट करूँ" और उधर अमरसिह थापा को यह कहला भेजा कि "तुम यदि कुछ मार काट न करो, किसी की जान न मारो तो मैं कॉंगडे का किला तुम्हे देने के लिये तैयार हूँ।" पर वह नौवत न पहुँची। रणजीत धडाके के साथ ता० २४ अगस्त सन् १८१९ ईसवी मे कॉंगडे जा पहुँचा ओर उसने गोरखा को आडे हाथ जा लिया। थापाजी जो कॉंगडे म अपना झडा थापने का स्वप्न देख रहे थे, महाराज लाहौर की प्रवल सेना के सामने तनिक भी न ठहर सके और कॉंगडे का किला छोड कर खिसक गए। इधर रणजीत ने किला अधिकार करके गोरखों के पीछे (जो एक दूसरे पहाडी इलाके मनकेरा को घेरे हुए थे) अपनी सेना दौडाई और थोडीसी लडाई के वाद उन्हे वहाँ से भी बेदखल करके भगा दिया। अव तो सर्दार अमर सिह ने विवश हो ॲंगरेजों के अफसर जनरल अक्टर-लोनी से सहायता चाही। पर पहले की सधि (जिसका वर्णन आगे के अध्याय मे आवेगा) के अनुसार उन्होंने रणजीत के विरुद्ध गोरखा को किसी प्रकार की सहायता देने से साफ इनकार किया। सन १८१४–१५ ईसवी मे दो वार गोर्खों का अगरेजो से युद्ध हुआ था, पर दोनो वार गोर्खों को हार कर शत्रु से मुँह मॉंगी शर्तों पर सधि करनी पडी थी। इसलिये अमर सिह जव ॲंगरेजो पर भी कुछ दवाव न डाल सका तो उसे लाचार हो फिर नैपाल को कोरे हाथ इज्जत गँवा कर

वापस जाना पड़ा। इधर महाराज राजा ससारचद की मूर्खता का हाल सुन चुके थे। सो ऐसे कायर के हाथ मे काँगडे का इलाका रहने देना अनुचित समझ कर उन्होंने ससारचद को काँगडे से बेदखल कर दिया तथा अपने सर्दार दिस्सा सिह मजीठिया को वहाँ का शासक नियत किया। इसके सिवाय चपा, नूरपुर, शापुरा, कोटा, जसरोटा, वसूली, मानकेरा, जसवर्ण, सिब्रिया, गोलींद, खलूर, मडी, सुकेत, कुल्लु, दातापुर इन इलाका के शासन का भार भी उसी सर्दार के सपुर्द किया। मार्ग में श्रीज्वालामुखी का दर्शन तथा पूजा करते तथा सुकेत और मडी की रियासतों से नजराना वसूल करते हुए वे जालवर जा पहुँचे। वहाँ पर भी हरियाना तथा भूप-सिहेरा नाम के दो इलाके अधिकृत किए गए। यह सब काम करते हुए महाराज अमृतसर को वापस आए। यहाँ आ कर अपने दीवान भवानीदास को कुछ सेना के साथ जशपुरे के इलाके पर भेजा। यह डेडू नाम के एक डोगरे राजपूत क अधीन था। यद्यपि यह सर्दार बडी बहादुरी से लडा, पर अत मे उसे हार खानी पडी और उसका इलाका महाराज लाहौर क अधीन हुआ और इस इलाके के किले सैदगढ मे महाराज का थाना कायम हो गया।

इसके बाद यह सवाद मिला कि वजीराबाद का हाकिम परलोक सिधार गया है, सो उसके इलाके पर दखल जमाने के लिये महाराज स्वयम् जा पहुँचे। रईस वजीराबाद का लडका हाथ जोड कर सामनें आया और एक लाख रुपया नजराना देकर उसने महाराज लाहौर की अधीनता स्वीकार की।

यहाँ से आगे बढ कर महाराज ने चेनाव पार किया और साहब सिंह भंगी (जो कि गुजरात का स्वामी था) का इलाका इसलामगढ अपने अधीन कर लिया। रणजीत के आने का समाचार सुनकर साहब सिंह भंगी जलालपुर के किले मे भाग कर जा छिपा। पर महाराज ने उसको वहाँ से भी खदेड कर वह किला भी छीन लिया। यहाँ से खदेडा जा कर अब साहब सिंह ने रोहतास और मीरपुर के बीच मँगोला नाम के किले मे आश्रय लिया। इधर महाराज ने अपने दीवान फकीर अजीजुद्दीन को बहुत सी सेना के साथ साहब सिंह के खास इलाके गुजरात पर चढाई करने के लिये भेज दिया। उसके जाते ही सहज मे गुजरात दखल हो गया तथा विजयोन्मत्त सेना ने नगर लूटना चाहा, पर अजीजुद्दीन ने सिक्खों को ऐसा करने से रोका। इस पर सिक्ख लोग जब कुछ नाराज हुए तो उसने वहाँ की प्रजा से कुछ रुपया नजराने के तौर पर वसूल कर के सैनिकों को बाँट दिया जिससे सब सतुष्ट हो गए और निरीह प्रजा व्यर्थ के दु ख और अत्याचार से बच गई। इसके सिवाय साहब सिंह भंगी का खजाना इत्यादि जो कुछ मिला सब सीधा महाराज के पास रवाना कर दिया गया। फकीर अजीजुद्दीन की इस कार्रवाई पर रणजीतसिंह बहुत प्रसन्न हुए और भरे दर्बार में उन्होने अपने हाथ से उसे खिलत दी और उसके भाई को गुजरात का शासक नियत किया। इसके बाद महाराज को यह सवाद मिला कि काबुल के अमीर शाहजमा को उसके वजीरो ने अधा कर के तख्त से उतार दिया है और वह महाराज लाहौर का शरणार्थी हो कर भाग

कर रावलपिंडी चला आया है। महाराज ने शरणागत की रक्षा की और उसके निर्वाह के लिये वे उसे नित्य पचीस रुपया देने लगे। अब महाराज की यह इच्छा हुई कि किला मगोला भी जिसमें साहब सिंह भगी ने आश्रय लिया था, छीन लिया जाय, पर रणजीत की बूआ ने जो साहब सिंह की स्त्री होती थी, महाराज की बहुत कुछ आरजू मिन्नत की, जिसमे दया कर के महाराज ने अपने फूफा के पास उक्त किला रहने दिया। इसके अनतर कोई एक सर्दार फतह खाँ था, उसका सब इलाका जप्त किया गया और वह कैद कर लिया गया, तथा सर्दार इतर सिंह वारी का किला शाहीवाल और खुशाब भी अधीन किया गया। इसके बाद सन् १८१० ई० की ३री फरवरी को शाहजमा का भाई शाहसूजा भी परास्त हो कर काबुल से भाग आया। महाराज ने किले खुशाब में उस से भेंट कर उसकी बहुत खातिरदारी की। वह अपने भाई शाह-जमान से मिलने के लिये रावलपिंडी चला गया और दोनो भाइयों ने मिल कर पेशावर अधिकार कर लिया और काबुल का भी बहुत सा इलाका जीत लिया पर दैव के मारे फिर छ मास बाद इन लोगो को हार कर अटक के इस पार आ जाना पडा। इधर रणजीत ने नजराने का रुपया न मिलने के कारण पुन मुलतान पर चढ़ाई कर दी, पर अब की बार हाकिम मुल-तान ने नजराना देने के बदले बडे जोर शोर से मुकाबला किया और मारे तोपो के सिक्खो के नाकों दम कर दिया। सिक्खों ने भी मुकाबले में अपने भर सक कुछ कसर नहीं रक्खी, यहाँ तक कि इनके दो तीन नामी नामी सर्दार मारे

गए और सर्दार हरि सिंह नलुवा भी जख्मी हुआ पर मुलतान पर कब्जा न हो सका। अब तो रणजीत ने और भी बड़ी बड़ी तोपें मँगवाई जिनसे ढाई ढाई मन के गोले दागे जाते थे, पर इन तोपों के चलानेवाले शिक्षित गोलदाज रणजीत की सेना मे नहीं थे, इस लिये तोपें काम में न लाई जा सकीं और इस मौके पर सिक्खों की मनसा तो पूरी न हुई, पर नव्वाब मुल्तान ने कहला भेजा कि "इस समय मेरे पास रुपया नहीं है जो आपको दूँ, आप किसी मनुष्य को प्रतिभू स्वरूप ले जाइए, जब रुपया होगा मैं दे कर छुड़ा लूँगा।" महाराज ने इस मौके पर यही गनीमत समझा और नव्वाब के श्वसुर को प्रतिभू स्वरूप अपने साथ ले कर वे लाहौर वापस आए। इसके बाद सिक्खों ने सूजाबाद के किले पर चढाई कर दी, पर कुछ विशेष प्रभाव न डाल सके। इधर चार मास व्यतीत हो गए और मुलतान से खिराज बाबत एक पाई भी नहीं आई। तब तो महाराज ने पाँच हजार सेना दे कर सर्दार दिल सिंह को उस ओर भेजा। सर्दार दिल सिंह राह में और भी दो किलो पर अधिकार करता हुआ मुलतान जा पहुँचा और पचास हजार रुपया नव्वाब मुलतान से वसूल करता तथा राह में लौटती बार और भी एक नामी किला दखल करता हुआ लाहौर चला आया। इस पचास हजार के सिवाय उपरोक्त किलो से लूट में मिला हुआ और भी बहुत सा द्रव्य सर्दार दिल सिंह ने ला कर महाराज के अर्पण किया। महाराज सर्दार दिल सिंह की कारगुजारी से बेहद खुश हुए और उसे खिलत दे कर उन्होंने सम्मानित किया। इसके अनतर

वजीराबाद के किले पर चढाई हुई जो सहज ही महाराज के अधिकार मे आ गया। वहाँ के रईस को निर्वाह के लिये दस हजार की एक जागीर दे दी गइ और वजीराबाद लाहौर के राज्य मे मिला लिया गया। इन दिनो महाराज ने नक्का नाम का एक नामी इलाका अधिकार कर अपने युवराज खड्गसिंह को दे दिया। इधर एक दिन दीवान हुकुमचंद ने विनय की कि "पहाड़ी राजाओं ने वर्षों से एक पाई भी खजाने म नहीं दी है। इसका कुछ प्रबंध होना चाहिए।" महाराज ने तत्काल सैन्य सजने की आज्ञा दी और दीवान भवानी दास को पुन आज्ञा दी कि जा कर इन राजाओं से प्राप्य कर वसूल कर लावें। दीवान भवानी दास कई सर्दारो के साथ पहाडी इलाकों पर चढ गया और मडी, कुल्लू और सुकेत वालो से पचहत्तर हजार रुपया वसूलकर के ले आया। आते हुए राह मे फीरोजाबाद का किला भी दखल कर लिया गया। इसके बाद बहादुरगढ का किला भी छीना गया और वहाँ का अधिकारी सर्दार बहादसिंह कैद कर लिया गया। थोड़े ही दिनों के अनतर भाग सिंह अहलुवालिया का इलाका भी जप्त कर लिया गया, पर उस सर्दार की माता आ कर महाराज के चरणों पर गिर पड़ी और बहुत कुछ रोई धोई, जिस पर दया कर के रणजीत ने एक लाख की जागीर दे कर उसे विदा किया। इसी प्रकार से कितने ही छोटे छोटे इलाके नित्य ही महाराज के अधिकार में आया करते थे, जिनके अधिकारियों के निर्वाह के लिये कुछ जागीरें दे कर, महाराज उन इलाकों को अपने राज्य मे मिला

लेते थे। केवल मुख्य मुख्य इलाकों का वर्णन किया जा रहा है। भ न्नर नाम का एक बड़ा भारी इलाका था, जिसके अधिकार करने मे महाराज को बहुत परिश्रम करना पड़ा था। इस इलाके पर अधिकार कर महाराज निमक की खानो का परि दर्शन करने गए। ये खानें, जिनका निमक पजाबी सधा निमक के नाम से प्रसिद्ध है, महाराज की आय का एक मुख्य द्वार थीं। यहाँ से लौटते हुए और भी दो तीन इलाके महा राज के अधिकार मे आए। वहाँ से वापस आने पर महा राज को यह खबर मिली कि वजीर काबुल अपनी अफगान सेना के साथ पजाब पर चढ़ा आ रहा है, सो इस सवाद क सुनते ही महाराज फौरन उससे जा कर मिले और उसके पजाब मे आने का कारण पूछा। उसने कहा कि "मैं पजाब मे कुछ फिसाद मचाने नहीं आया हूँ। सूबा काश्मीर और अटकवाले ने मेरे विरुद्ध लड़ने के लिये शाहसूजा को मदद दी थी, सो उन्हीं लोगों को दड देने के लिये मेरी यह चढाई है।" रणजीत ने उसका मनसूबा मालूम कर के अपनी ओर से उसे कुछ तोहफा इत्यादि भेट किया और अपनी मित्रता का उसे विश्वास दिलाया। उसने भी बदले में महाराज लाहौर को काबुल की कई अजूबा अजूबा सौगातें भेंट कीं और उनकी मित्रता को सहर्ष अगीकार किया। इस काम को निपटा कर लौटते हुए राह में महाराज ने एक इलाका तिलोकनाथ दखल किया। इसमें से सात हजार वार्षिक आय का इलाका महाराज ने मजीठिया सर्दार को दान किया, क्योंकि यह उसी के परा क्रम का फल था और बाकी अपने राज्य में मिला लिया।

इसके सिवाय राह मे कई सर्दारों से करीब चालीस हजार रुपए के नजराना भी वसूल किया गया। यहाँ से लाहौर आ कर महाराज ने जालधर की ओर निगाह फेरी और जालधर नगर को सिक्खों ने खूब मनमाना लूटा क्योंकि वहाँ का सर्दार बुद्धसिह रणजीत के आने की खबर सुनते ही भाग गया था। इस मुहिम मे महाराज के अधीन प्राय तीन लाख वार्षिक आय के इलाके आ गए। सर्दार बुद्धसिंह भाग कर अगरेजी इलाके मे चला गया था, इसलिये गिरफ्तार न हो सका। इसी महीने में काबुल से निकाले हुए अमीर शाहजमान और शाहसूजा लाहोर आए ओर महाराज की मारफत काबुल पर चढाई करने की इच्छा से उन्होंने अगरेजों की सहायता चाही, पर इस अवसर पर अगरेजो ने इस झगड़े मे पड़ना अनुचित समझ कर इन लोगों का प्रस्ताव अस्वीकार किया। इधर महाराज ने दीवान हुकुमचद और युवराज खड्गसिह को अखनौर और राजौरी दखल करने को भेजा। यह कार्य्य इन दोनों ने बड़ी खूबी से निपटाया तथा महाराज ने प्रसन्न हो कर ये दोनों इलाके युवराज खड्गसिह को दान दे दिए। इधर सर्दार जयमल मजीठिया मृत्यु को प्राप्त हुआ तो महाराज ने उसका सब इलाका जप्त कर लिया और अमृतसर के महाजनों के यहाँ उसका जो रुपया बाकी था वह भी वसूल कर लिया और उसकी विधवा स्त्री और नाबालिग बच्चे के निर्वाह के लिये पन्द्रह हजार की जागीर दान कर दी। इलाका भम्भर थोड़े ही दिन हुए बड़ी कड़ी लड़ाई के बाद महाराज के अधिकार में आया था। यहाँ के शासक के कुछ वशधर डेरा इस्मा-

इल खाँ में रहते थे। इन लोगों ने इलाका राजौरी में निकाले हुए सर्दारों के साथ मिल कर विद्रोह खड़ा किया और नम्बर पर चढ़ाई कर दी। महाराज को इसकी खबर लगते ही उन्होंने इन लोगों को मार भगाया और इसी अपराध में इन लोगों के इलाके जो इसमाइल खाँ से पीर पजाल तक फैले हुए थे, सब जप्त कर लिए गए।

हम पहले कह आए हैं कि काबुल का वजीर मुहम्मद खाँ काश्मीर और मुल्तान के हाकिमों के विरुद्ध इस कारण चढ़ाई करना चाहता था कि उन्होंने शाह सूजा को काबुल के तत्कालीन अमीर के विरुद्ध युद्ध करने में सहायता दी थी, और वह महाराज लाहौर से मित्रता भी स्थापित कर चुका था। अस्तु, इस चढ़ाई में उसने रणजीत सिंह की सहायता चाही। रणजीत सिंह ने इस शर्त पर सहायता देनी स्वीकार की कि "जीते हुए मुल्क में से तीसरा हिस्सा हम ले लेंगे।" वजीर काबुल के इस शर्त को स्वीकार कर लेने पर, महाराज लाहौर ने अपनी बारह हजार सिक्ख सेना दीवान हुकुमचंद के साथ, उसकी सहायता के लिये भेज दी। इस युद्ध में सिक्ख सेना ने बड़ी वीरता दिखाई और सूबा काश्मीर के भाई को मार कर काश्मीर का नामी किला दखल कर लिया तथा सूबा काश्मीर और शाहसूजा भी गिरफ्तार हुए। इन लोगों ने जब यह आपत्ति आई देखी तो, दीवान हुकुमचंद को कहला भेजा कि "यदि आप हमलोगों को वजीर काबुल के सपुर्द न करें तो मैं अपना अटक का किला आपकी नजर करूँगा।" दीवान हुकुमचंद ने पहले तो इन दोनों को अपने कब्जे में

किया और फिर इनकी बात स्वीकार कर इन्हें बड़ी खातिर से अपने ही खेमे में रहने दिया। जब वजीर काबुल ने दीवान साहब से इन प्रतिष्ठित कैदियों को माँगा तो उन्होंने देने से साफ इनकार किया, क्योंकि इसी बीच में शाहसूजा की बेगम ने भी महाराजा लाहौर के पास एक पत्र भेजा था कि "यदि आप मेरे पति को वजीर कांबुल के हवाले न करेंगे तो उनसे आप को "कोहनूर" नामक एक अति बहुमूल्य प्रसिद्ध हीरा दिलवा दूँगी।" उधर वजीर काबुल ने महाराज लाहौर के पास दीवान हुकुमचद की शिकायत लिख भेजी कि आपकी प्रतिज्ञा के अनुसार यह कैदियों को मेरे हवाले करने से इनकार करता है।" दीवान हुकुमचद ने भी समाचार लिख कर लाहौर भेज दिया और वह महाराज के जवाब का आसरा देखता रहा। महाराज ने दीवान हुकुमचद को लिख भेजा कि पहले, "सूबा काश्मीर से एक प्रतिज्ञा पत्र इस विषय का लिखवा कर भेज दो कि 'उसने अपनी राजी से अटक का किला महाराज लाहौर को अर्पण किया है' और फिर दोनों कैदिया को सग लेकर लाहौर चले आओ। यदि वजीर काबुल इसमे कुछ चूँ चकार करे तो उसकी तलवार से खबर लो।" इस उत्तर के पाते ही दीवान हुकुमचद ने हाकिम काश्मीर से अटक अर्पण कर देने का प्रतिज्ञा-पत्र लिखवा कर महाराज के पास भेज दिया। इस पत्र के पाते ही महाराज ने अपने नामी वजीर फकीर अजीजुद्दीन को भेजकर अटक दखल कर लिया। इधर दीवान हुकुमचद इन दोनों कैदियों को लेकर लाहौर आए। वजीर काबुल चुपचाप सब वृत्तात देखता रहा। कुछ

बोला नहीं, क्योंकि उसे खटका था कि कहीं अधिक छेड़ छाड़ की तो फिर सिख लोग काश्मीर भी अधिकार कर लेंगे, अभी तो केवल अटक ही पर बीती है।" इस मुहिम पर जब दीवान हुकमचन्द भेजा गया था तो महाराज लाहौर ने मंडी, सुकेत चम्बा इत्यादि कई पहाड़ी राजाओं को भी इसकी सहायता के लिये जाने की आज्ञा दी थी, पर ये लोग कुछ दूर जाकर रास्ते ही से लौट आए थे, इस लिये महाराज ने इन रियासतों से दो लाख पन्द्रह हजार रुपया दंड का वसूल किया। इधर सूबा काश्मीर और शाहसूजा को संग ले कर दीवान हुकमचन्द जब लाहौर पहुँचे तो महाराज ने इन दोनों प्रतिष्ठित कैदियों को सम्मानपूर्वक लाहौर में नजरबन्द रक्खा। दो महीने बाद शाहसूजा की बेगम भी उसके पास आ कर रहने लगी। जब बेगम साहब आ गई तो महाराज ने कहला भेजा कि "आपने अपने पति से 'कोहनूर' नामक हीरा दिला देने का प्रण किया था, उसे अब पूरा करना चाहिए।" उत्तर में बेगम ने जब अपने पति को इस बात की सूचना दी तो उसने कोहनूर पास होने से साफ इनकार किया और महाराज को कहला भेजा कि "मेरे पास कोहनूर नहीं है, काबुल ही में छूट गया है, मेरी बेगम ने आपको भूल से ऐसी सूचना दे दी थी।" पर महाराज को पूरा विश्वास था कि "वह हीरा इसके पास अवश्य है" इसलिये-उन्होंने कहला भेजा कि "मुझे ठीक पता लग चुका है कि आपके पास वह हीरा है और उसी हीरे के मिलने की प्रतिज्ञा पर मैंने आपको काबुल के वजीर के चंगुलों से बचा कर उसे अपना शत्रु बनाया, सो

आपको अपनी प्रतिज्ञा से टलना मुनासिब नहीं।" पर इसके जवाब में फिर भी शाहसूजा, यद्यपि कोहनूर उसके पास था, नाहीं ही करता गया। तब तो महाराज को इसकी बेइमानी पर बडा क्रोध आया और उन्होंने आज्ञा दी कि "आज से इसके पास खाने पीने का सामान कुछ न जाने पावे"। ऐसाही हुआ। दो दिन तक बिना अन्न जल के बीत जाने पर भी शाहसूजा उस अमूल्य जवाहिर की माया नहीं त्याग सका, पर तीसरे दिन जब तृषा से अति व्याकुल हो उसने पीने का पानी मागा तो यही जवाब पाया कि "बिना 'कोहनूर' दिए एक बूँद पानी भी नहीं दिया जायगा।" ओह! क्या अवस्था थी! पास करोडों के मूल्य का, ससार के रत्नो मे अद्वितीय 'कोहनूर' मौजूद, पर अन्न की कौन कहे एक बूँद पानी भी दुष्प्राप्य हो गया। सच है, ऐसे ही अवसरों पर परमात्मा की महिमा का स्मरण हो आता है जिसने बिना दाम के हमे प्राणधारणोपयोगी चीजे मुक्तहस्त से दान की है, पर हम ऐसे नीच हैं कि इन अनत दानों के लिये कृतज्ञता प्रगट करने के बदले उलटे उससे हीरा, मोती, सोना, कौडी पत्थर आदि माँगते हैं। धिक्कार है हमारी समझ पर! अस्तु जब शाहसूजा के प्राण कठगत होने लगे तो उसने विवश हो रणजीत को कहला भेजा कि "आप स्वयम् आकर 'कोहनूर' ले जाइए और एक घूँट पानी देकर मेरी जान बचाइए।" इस सवाद के पाते ही रणजीत शाहसूजा के पास पहुँचा और सूजा ने अपनी कमरबद से खोल कर वह हीरा महाराज लाहौर के सामने रक्खा। इस अमूल्य

रत्न को देख कर महाराज तथा उनके साथियों के नेत्र चौंधिया गए और सब लोग 'वाह, वाह' कहने लगे। अँधेरी कोठरी में प्रकाश हो गया। केवल अँधेरी कोठरी ही क्यों, महाराज और उनके साथियों के चेहरे भी आनद से प्रकाशित थे, केवल अभागे शाहसूजा के दिल में अँधेरा था, जो उसके मलिन, सूखे और दुखित चेहरे से प्रकट हो रहा था। महाराज ने 'कोहनूर' के मिलते ही शाहसूजा के पास नाना प्रकार के अन्न, व्यजन, शरबत वगैर भिजवा दिए पर उस बिचारे ने सिवाय एक घूँट पानी के उस रात और कुछ नहीं खाया पीया। ओ हो! क्या ईश्वर की लीला है, एक घूँट पानी ही के लिये 'कोहनूर' देना पडा! पाठको, सोचो और समझो। वही 'कोहनूर' जो रणजीत को इतनी तरद्दुद से लब्ध हुआ इस समय हमारी सम्राज्ञी महारानी मेरी के राजमुकुट में लगा हुआ ससार की परिवर्तनशीलता का परिचय प्रदान कर रहा है। जब हीरा मिलने पर महाराज ने शाहसूजा से इसका मूल्य पूछा तो उसने यही कहा था कि "इसकी कीमत लाठी है। जिसकी लाठी मजबूत हुई उसी के पास यह रत्न रहा है। न जाने इस रत्न ने कितने राज्य नष्ट किए हैं, कितने सिर कटवाए है, खून बहाए हैं और न जाने आगे का भी इसे क्या क्या उत्पात मचाने हैं, जब आपकी हीन दशा आवेगी तो आपके पास भी यह रहने का नहीं। दो दिन का मजा लूट लीजिए।" अस्तु जो हो इस रत्न को प्राप्त करके महाराज बहुत प्रसन्न हुए और नगर भर मे रोशनी हुई तथा नाच रग जलसे हुए, कवले बिचारे शाहसूजा की कोठरी मे

दोया नहीं चला। समय की गति बड़ी बलवती है। कई इतिहासकारों ने रणजीत की इस कार्रवाई की निंदा की है और कहा है कि "विजित बंदी शत्रु को यों सता कर हीरा वसूल करना मुनासिब नहीं हुआ।" पर इसमें अनुचित तो कोई बात नहीं जान पड़ती। जब ये लोग महाराज को उक्त रत्न देने की प्रतिज्ञा पर अपनी जान बचा पाए थे तो फिर इसके पाने का रणजीत को सब तरह से हक था। जब माँगने पर उसने नहीं दिया तो इतने बड़े प्रतिष्ठित पुरुष की नगाहोरी तो कोई ले सकता ही न था। सबसे सुगम उपाय मिलने का यही था जिसका महाराज ने इस मौके पर अवलम्बन किया। इसमें निंदा की बात क्या हो सकती है? इस रत्न का किस्सा बड़ा पुराना है। ऐसी किंवदंती है कि यह हीरा महाभारत के समय भूरिश्रवा के भुजबंद मे था। चाहे जो हो इन बातों का कोई पुष्ट ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है, पर इतना तो अवश्य है कि ऐसे साफ पानी का इतना बड़ा हीरा संसार मे दूसरा नहीं है। यद्यपि ट्रांसवाल से तीन पाव वज़न का भी एक हीरा अंगरेजों को मिला है पर वह इसके पानी को नहीं पाता, और मोल पानी ही का है। अस्तु इस हीरे को महाराज लाहौर ने भी अपने भुजबंद मे जड़वाया। महाराज का प्रताप भी इस समय वास्तव मे कोहनूर की तरह चमक रहा था। वे जहां जाते विजय पाते और नया देश अधिकार में आता। इनका राज्य बिजली की तरह इन दिनों फैल रहा था। जब दिन अच्छे आते हैं तो ऐसा ही होता है। अस्तु इधर हीरा मिला उधर नूरपुर का राजा जिससे पचास

हजार नजराना मिलने की बात थी महाराज के भय से भाग कर सतलज पार चला गया और महाराज ने उसका सब इलाका जप्त कर लिया। इसी समय महाराज ने लाहोर में हजूरीबाग बनवाया जहा सगमर्मर की एक बहुत सुदर बारहदरी बनवाई जो कालचक्र से यद्यपि इस समय अलकारो से शून्य हो गई है, तो भी ऐसी सुंदर है कि दर्शकों का मन मोह लेती है। लाहौर जानेवालों के लिये यह बारहदरी एक दर्शनीय वस्तु है।

जब से हीरा छिन गया, शाहसूजा मनही मन महाराज का प्रबल शत्रु होगया और अपनी घात की प्रतीक्षा करने लगा, पर बहुत दिनों तक जब कोई अवसर हाथ न आया तो गुप्त रूप से उसने काश्मीर के हाकिम मुहम्मद अजीम खा के पास इस आशय का एक पत्र भेजा कि "यदि इस समय लाहौर पर चढाई कर दो तो अवसर पाकर मैं रणजीत को मार डालूँगा।" पर महाराज लाहौर की तेज निगाहों से उक्त पत्र बच नहा सका और वह दूत पकड़ा गया। जब पत्र बाचने पर उसका विषय स्पष्ट हुआ तो महाराज ने बडे क्रोध मे आकर शाह-सूजा से डॉटकर इसका कारण पूछा। शाहसूजा बेचारा डर के मारे थर थर कापने लगा और बोला कि "मेने यह पत्र कदापि नहीं लिखा है और न इस पर मेरे दस्तखत हैं। मेरे मुशी ने मुझे बिना खबर किए ऐसा पत्र लिख दिया होगा"। जब मुशी बुलाया गया तो उसने मालिक की निमक-हलाली की और अपने स्वामी के कथन की पुष्टि कर इस अपराध का भार अपने ऊपर ले लिया। महाराज ने उस

मुंशी को कैद कर लिया और जब शाहसूजा ने उसके लिये महाराज को पचास हजार दिए तब मुंशी कैद से छूट पाया। अब तो रणजीत को काश्मीर के सूबे पर भी खटका हो गया और वे उधर ही को रवाना हुए। सूजा का लाहौर में छोड़ जाना निरापद न समझ कर वे उसे भी अपने साथ लेते गए, पर एक पड़ाव पर जब कि महाराज कुछ आगे बढ गए थे, यह पीछे रह गया और डाकूओं ने इसके खेमे मे डाका डाल कर सर्वस्व अपहरण कर लिया। उधर महाराज की आज्ञा से इसकी बेगम का कुल जेवर लाहोर के खजाने मे दाखिल हो ही चुका था। सो बेगम मौका पाकर भाग के लुधियाने चली गई थी अस्तु शाहसूजा रोता पीटता लाहौर वापस चला आया, पर महाराज की आज्ञा से उसपर सख्त पहरा रक्खा जाता था। एक दिन सन् १८१५ ई० के अप्रैल मास की अँधियारी रात में आधी रात को यह आफत का मारा बादशाह, लाहौर के लुहारी दरवाजे की नाली की राह से भाग कर बाहर निकल गया। यद्यपि वह नाली के कीचड़ और दुर्गंध से सन गया पर प्राणों के भय से इसने इसकी कुछ भी परवाह नहीं की और किस्ती न मिलने पर रावी नदी भी रातोंरात तैर कर इसने पार की और पार कई कोस पैदल चलने के बाद इसे एक बैलगाडी मिली। उसी पर सवार होकर येनकेन प्रकारेण वह जमू पहुँच गया। रणजीत ने उसकी बेगम का लुधियाने जाना सुनकर उसे पकडने के लिये उधर ही सवार दौडाए पर उधर तो वह गया ही न था, इसलिये पकड़ा न जा सका।

जयू पहुँच कर शाहसूजा ने इधर उधर से अपने साथिया का बटोर कर काश्मीर पर अधिकार जमाना चाहा पर हत भागे की यह चेष्टा भी विफल हुई और उसे वड़ी हैरानी उठानी पड़ी। अव सिवाय अँगरेजी अमलदारी मे भाग कर शरण लेने के उसे और कोइ चारा न रहा, अस्तु वहुत कुछ हैरानी परेशानी उठाता और अपने नसीब को धिक्कारता अत को सन् १८१६ ई० के सितवर मास में वह ज्यों त्यो कर कुल्छ की राह मे लुधियाने पहुँच गया। वृटिश गवर्नमेंट ने इस अभागे वादशाह पर कृपादृष्टि की और उसे अपनी शरण म लिया तथा पचास हजार रुपया वार्षिक की पशन उसे और चौवीम हजार रुपया वार्षिक की उसके अधे भाई को दी।

यह हाल पाठकगण पढ़ चुके हैं कि रणजीत का दीवान अटक का किला अधिकार कर चुका था। कावुल का वजीर पहले तो कुछ न वोला, पर फिर जव उसने देखा कि अव शाहसूजा वगैर अन्य शत्रु पस्त हो गए हैं तो रणजीत के पास उसने कहला भेजा कि "अटक का किला खाली कर दो।" महा राज ने जवाव भेजा कि अपने प्रतिज्ञानुसार जीते हुए प्रदेशों से एक तिहाई दो तो अटक का किला छोड़ सकता हूँ।" उसने जवाव दिया कि "तुमने अपने प्रतिज्ञानुसार शाहसूजा को मेरे हवाले नहीं किया, इसलिये एक तिहाई भाग लेने के अधिकारी नहीं हो।" यह कहला कर उसने अटक का किला अपने अफगानी सिपाहियो द्वारा घेर लिया। किले के भीतर यद्यपि सिक्ख जवान थोड़े थे, पर वे वड़ी वीरता से अवरोध का

उत्तर देते रहे। लड़ते लड़ते इन लोगों को कई दिन व्यतीत हो गए और किले के भीतर रसद पानी का टोटा होने लगा। जब महाराज को इसकी खबर लगी तो उन्होंने तत्काल ही अपने वीर दीवान हुकुमचद और उसके भाई करमचद की अधीनता मे दो पूरी पल्टने देकर अटक का अवरोध भग करने को उन्ह भेज दिया। इन दोनों सर्दारों के आते ही सिक्ख और अफ़गानों में खूब घनघोर युद्ध छिड गया पर अत को खालसा की तलवारों का वार अफगान न सह सके और दोस्त मुहम्मद खाँ अपनी सेना के साथ अटक का अवरोध त्याग कर भाग गया। दीवान हुकुमचद किले मे प्रविष्ट हुआ और सिपाहियों को रसद इत्यादि देकर और किले की रक्षा पर नवीन सेना नियत कर लाहौर चला आया। दीवान साहब की सफलता से महाराज बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसकी जागीर बढाकर उसे सम्मानित किया। इस कार्य्य के बाद महाराज ने काश्मीर पर चढाई करने का विचार किया और पहले कुमार खड्गसिंह को यह आज्ञा देकर सियालकोट रवाना किया कि "वहाँ पहुँच कर अधीनस्थ सारे पहाडी राजाओं को बुला कर इकट्ठा करो, पीछे से मैं भी आता हूँ।" उसने सियालकोट पहुँच सारे पहाडी राजाओं के पास आज्ञापत्र भेज दिया और ये लोग आ आ कर जमा होने लगे। पीछे महाराज भी तैयार होकर पहुँच गए, पर थोडे ही दिनों में इस जोर शोर से बरफ गिरने लगी कि विवश हो महाराज को कुछ दिनों के लिये यह चढाई रोक रखनी पडी। इधर की चढ़ाई रोक कर महाराज ने दीवान मोकमचद और सर्दार दलसिंह को किला मखदा दखल

करने भेजा। यह किला थोड़ी सी लड़ाई के बाद महाराज के अधिकार में आ गया। इसके अनंतर महाराज ने दीवान हुकुमचंद को आज्ञा दी कि "तुम अपनी सेना के साथ रावलपिंडी में तैयार रहो" और कुमार खड्गसिंह को पूर्ववत सियालकोट में ठहरे रहने की आज्ञा दे कर महराज अमृतसर स्नान दर्शन करने गए। इसी अवसर पर वहाँ निजाम हैदराबाद का वकील नव्वाब की ओर से कुछ भेंट लेकर महाराज के दर्शनों को आया। महाराज ने उसकी बड़ी खातिर की और नव्वाब हैदराबाद को अपनी मित्रता का सँदेसा भेजकर संतुष्ट किया। इन्हीं दिनों मुलतान के हाकिम के यहाँ से यह संवाद आया कि काबुल का वजीर फतहखाँ मुल्तान पर चढ़ा आ रहा है। महाराज ने कुछ फौज के साथ कुमार खड्गसिंह को मुलतान की ओर रवाना कर दिया। सिक्खों का आगमन सुनकर वजीर फतहखाँ अपना सा मुँह लेकर चुपचाप लौट गया, उसकी चूँ करने की हिम्मत न पड़ी।

इधर महाराज ने जसरोटे के राजा के मरने पर उसका इलाका दखल करने के लिये अपनी सेना भेजी और उसका इलाका दखल कर लिया। उसका लड़का एक लाख रुपया नजराना लेकर महाराज की सेवा मे हाजिर हुआ और महाराज ने उसका इलाका वापस कर दिया। उधर महाराज को काश्मीर पर चढ़ाई करने की बड़ी चटपटी लग रही थी और सियालकोट मे उन्होंने अपने अधीनस्थ राजे और सर्दारों को इकट्ठा होने की आज्ञा दी थी। जब सब लोग इकट्ठे हो गए तो महाराज ने चढ़ाई की

तैयारी कर दी, पर दीवान हुकुमचद इत्यादि मुख्य मुख्य अनुभवी पुराने सर्दार महाराज की इस चढ़ाई के विरुद्ध थे और इस समय पुन चढ़ाई रोक रखने के लिये यह कह कर उन लोगों ने सलाह दी कि "अभी रसद इत्यादि का उचित प्रबध नहीं हुआ, इसलिये कुछ ठहरना चाहिए।" पर महाराज ने किसी की एक न सुनी और चढ़ाई कर ही दी। इस चढाई मे कई अधीनस्थ सर्दार भी सग थे, इनमे भम्बर का सर्दार भी था, जिसका इलाका बड़ी लडाई के बाद महाराज ने जीता था और वह मन ही मन महाराज से खार खाता था, इस लिये जब चढाई करने का सुगम मार्ग रणजीत ने पूछा तो इसने दुष्टता कर बड़ा बीहड़ और दुर्गम मार्ग बतला दिया। इस राह से जाने में महाराज की सेना दो भागों मे बँट गई। इनमें से सेना का एक भाग सर्दार दलसिंह, तोपखाने के अफसर गौसखा और सर्दार हरिसिंह नलुआ के अधीन था। ये लोग राह मे बहराम गला का किला अधिकार करते हुए, हरिपुर जा पहुँचे और दीवान मोकमचद के पोते दीवान रामदयाल की अधीनता मे इस किले पर चढ़ाई की गई। दो तरफा खून अग्नि वृष्टि हुई। अफगानो ने बड़ी तेजी दिखलाई और इधर से सिक्खों ने भी कुछ कसर न रक्खी, पर अग्निवृष्टि के सिवाय आकाश से बडी तेजी से बरफ की, आधी चलने लगी और लगातार बरफ गिरने लगी, जिससे सिक्खों के हाथ ठिठुर कर बेकाम हो गए और उन्हे बदूक थामना या दागना कठिन हो गया। अत मे शत्रु का पूरा जवाब देना तो कहा, अपना बचाव करना भी कठिन हो गया और इसी

गड़बड़ में सिक्खों के कई नामी नामी सर्दार भी मारे गए और उन्हें भाग कर लड़ाई का मैदान त्याग देना पड़ा। सर्दी के मारे इनके नाकों दम हो गया, बहादुरी एक काम न आई। ये लोग भागते भगाते पीर पजाल पहुँचे और ज्यों त्यों कर एक ग्राम में इन्होंने आश्रय लिया। उधर सैन्य के दूसरे भाग की भी जो स्वयम् महाराज की अधीनता में था, यही दशा हुई और सर्दी तथा बरफ ने सारे सिक्ख जवानों के हाथ पैर अँकड़ा दिए। उधर से जब शत्रुओं के वार हुए तो इन्हें विवश हो पीठ मोड़नी पड़ी। इधर महाराज को जब दीवान रामदयाल की हार की खबर आई तो उन्हेंने उन लोगों की सहायता के लिये पाच हजार जवान और भेजे पर इस सहायता से भी दीवान रामदयाल की हिम्मत आगे बढ़ने की न पड़ी क्योंकि सरदी और बरफ से सेना अतिशय व्याकुल थी और सिपाहियों ने आगे बढ़ने से साफ इनकार किया। अस्तु, विवश हो इसे लौटना पड़ा। यद्यपि सामने बरफ और पीछे में दुश्मन दोनों का आक्रमण हो रहा था, पर दीवान रामदयाल ने बड़ी बुद्धिमानी से लड़ते भिड़ते सेना का प्रत्यावर्तन (Retreat) किया। उधर महाराज भी सेना के दूसरे भाग के साथ लाहौर वापस चले आए। तात्पर्य यह कि इस मुहिम में महाराज को बड़ी परेशानी और हानि उठानी पड़ी। एक नामी सर्दार दलसिंह तो युद्ध ही में मारा गया और दूसरा दीवान मोकमचद सरदी से ऐसा बीमार हुआ कि लाहोर पहुँच कर सवत १८७१ के माघ मास की १५ तारीख को उसका भी स्वर्गवास हो गया। यह सर्दार

बड़ा पुराना, अनुभवी, शूर वीर और महाराज के विश्वस्त सेवकों में से था, इस लिये इसकी मृत्यु से महाराज को बेहद शोक हुआ और उस दिन महाराज ने पानाहार कुछ नहीं किया, पर कर क्या सकते थे। काल के आगे तो किसी का चारा नहीं चलता, अत को विवश हो मनमार सब्र करना ही पड़ा और उसके लड़के मोतीराम को दीवान तथा पोते दीवान रामदयाल को सेनापति की प्रतिष्ठित पदवी प्रदान की गई। इन सब कामों से निपटने पर महाराज ने खबर पाई कि मालवा देश के हाकिम फुल्लासिह ने विद्रोह खड़ा किया है और महाराज लाहौर के सिपाहियों को मार पीट कर वह स्वतन्त्र हो बैठा है। महाराज ने उधर दीवान मोतीराम को रवाना किया। दीवान ने वहाँ पहुँच कर थोड़ी सी लड़ाई के बाद सर्दार फुल्लासिह को मय उसके वीर अकालियो की सेना के साथ कैद कर के लाहौर भेज दिया। महाराज ने सर्दार फुल्लासिह से शातिपूर्वक रहने की कसम खिलवाई और उसकी अकालियो की सेना जो युद्ध मे बड़ी निपुण प्रसिद्ध थी अपने यहा नौकर रख ली।

इसके बाद जब महाराज को खबर लगी कि काश्मीर की चढाई वाले मामले मे हाकिम भब्बर ने उसे धोखा दिया था, तो उन्होंने बहुत नाराज होकर उसके भब्बर और राजोरी दोनों इलाके जप्त कर लिए और लगे हाथ नूरपुर और झग का इलाका भी जप्त कर लिया। इसके बाद महाराज ने पुन भावलपुर और मुलतान की ओर कदम बढाया, और राह मे पाकपटन का इलाका दखल करके उसके शासक पर नौ हजार

रुपया वार्षिक कर नियत कर दिया। भावलपुर पहुँचने के पहले ही नव्वाब का वकील महाराज को आगे से आ कर मिला और उसने अस्सी सहस्र रुपया नजराना दिया तथा सत्तर हजार वार्षिक कर देने की प्रतिज्ञा की। योंही राह में सबसे नजराना वसूल करते हुए चैत्र वदी १५ को महाराज हडपा के मुकाम पर पहुँचे। वहाँ के शासक का वकील नजराने में चालीस हजार रुपया देने लगा, पर उचित रकम न समझ कर महाराज ने उसे अस्वीकार किया और आगे बढ कर यह इलाका दखल कर लिया। यहाँ से सीधे मुलतान की ओर चढाई हुई। मुलतान के नव्वाब ने तुरत ही अस्सी हजार रुपया दिया और थोड़े ही दिनों में बाकी का और पचास हजार भी देना स्वीकार किया। यहाँ से नज़राना वसूल करके महाराज मानकेरा के इलाके पर चढ गए। वहाँ के हाकिम ने केवल बीस हजार रुपया देकर बला टालनी चाही, पर महा राज ने सवा लाख रुपया तलब किया और जब उक्त द्रव्य वह नहा दे सका तो मानकेरा के इलाके पर चढाई की गई और सिक्खों ने लूटपाट मचा तथा गोले गोली की मार से इलाका विध्वस्त कर दिया। अत में विवश हो यहाँ के हाकिम को पचास हजार रुपया देकर अपनी जान छुडानी पड़ी। इधर से निपट कर महाराज ने झग इत्यादि जो इलाके जप्त किए थे वे अपने मुँहलगे सर्दारों को बाँट दिए। जैसे विश्वस्त सेवकों पर महाराज कृपा करके उन्हें पुरस्कृत करते थे, वैसे ही अयोग्यों को दड भी देते थे। इन्हीं दिना राजकार्य्य में असावधानी करने के कारण सर्दार रामसिंह का सर्वस्व अपहरण

कर लिया गया और इस सर्दार से लेनदेन का सबध रखनेवाले एक महाजन का भी सर्वस्व जो करीब चार लाख के था छीन लिया गया। इससे राजसेवको पर बडा आतक छा गया और, सब लोग नियमपूर्वक बडी सावधानी से अपना अपना काम देखने लगे। इसके बाद महाराज ने सवत् १८७३ मे एक आम दर्बार कर के कुमार खड्गसिह को युवराज बनाया और सब जागीरदार और राजकर्मचारियों द्वारा उन्हे भेट दिलवाई। यहाँ से फिर महाराज अमृतसर गए और स्नान दर्शन करके हरिमदिर में उन्होंने एक हजार रुपया भेट चढ़ाया।

अमृतसर म स्नान पूजा के बाद महाराज की सवारी अग्नाना नगर पहुँची। वहाँ पहुँचते ही राजा चबा का वकील महाराज से विनयपूर्वक मिला और उसने चार हजार रुपया वार्षिक कर देना स्वीकार किया। यहाँ से आगे चलकर जब महाराज नूरपुर के इलाके मे पहुँचे तो इस इलाके को ऊजाड देख कर बडे दु खित हुए और उन्होंने अन्य अन्य स्थानो के निवासियो को बुलाकर वहाँ बसाया, जिससे यह इलाका पुन पहले सा रौनक हो गया। यहाँ से आगे बढकर महाराज ने पहाड़ी राजाओ से कर वसूल करना आरभ किया जो सब मिलाकर करीब दो लाख पाँच हजार रुपया हुआ। इसके बाद महाराज ने कर वसूल करने के लिये कुछ सेना मुलतान की ओर भेजी, पर ये लोग कुछ विशेष प्रभाव न डाल सके और हारकर केवल दस हजार रुपए लेना स्वीकार कर वापस चले आए। महाराज इस विफलता से बहुत नाराज हुए और इस मुहिम के सर्दार भवानीदास को कैद करने की आज्ञा दी और जब

इसने बहुत कुछ हाथ पैर जोड कर क्षमा प्रार्थना की तो दस हजार रुपया जुर्माना लेकर उसे क्षमा कर दिया। इसके बाद किले मानकेरा पर चढाई हुई, जिसके साथ यह अहदनामा पक्का हुआ कि "अबसे नब्वाब मानकेरा अस्सी हजार रुपया वार्षिक कर महाराज लाहौर को दिया करेगा।" इस समय महाराज को खबर लगी कि हजारा प्रात के अफगानों ने फिर उपद्रव खडा किया है। इन्हे दमन करने के लिये महाराज ने कुँवर शेरसिंह और तारासिंह को कुछ सेना देकर भेजा। इन्होंने वहाँ पहुँच कर इन उपद्रवी अफगानों को एक कडी हार दी और उन लोगो से पचास हजार रुपया जुर्माना वसूल करके महाराज की सेवा मे वापस आए। महाराज कुँवरो की इस सफलता पर बहुत प्रसन्न हुए और अब की बार मुलतान का काम तमाम करने की मनसा से लडाई की भारी तैयारी करने लगे और सन् १८१८ ई० के जनवरी महीने मे उन्होंने पचीस हजार फौज के साथ युवराज खड्गसिह और सर्दार मिस्सर दीवानचद को भेजा। इनके सग अब की बडी बडी नामी चार तोपे भी भेजी गई। इधर महाराज ने हाकिम झग के बहुत कुछ विनती करने पर उसे कैद से छुडा कर उसका इलाका उसे वापस दे दिया और उसके लडके को अपने यहाँ जमानत के तौर पर रख लिया। उधर महाराज की सेना बडी धूमधाम से मुल्तान की ओर बढ़ी। राह म नव्वाब मुल्तान के दो किलो खानगढ़ और मुजफ्फरगढ पर अधिकार करती हुई यह सेना मुलतान नगर में प्रविष्ट हुई। मुल्तान का हाकिम मैदान में हार कर अपने दो हजार बहादुर अफगानों के साथ किले

के भीतर घुस गया और भीतर से युद्ध करने लगा। बाहर से सिक्खों की तोप आग उगलने लगीं, पर उधर से भी बडी सरगर्मी से गोले दागे जा रहे थे। योंही कुछ दिन लड़ाई चलती रही और वीरवर मुजफ्फर खाँ के आगे सिक्खों को किला लेना कुछ कठिन प्रतीत होने लगा। किले के अवरोध को चार महीना व्यतीत होगया, अब तो सिक्खो नें किंचकिंचा कर प्रसिद्ध जमजमा नामक तोप से गोले दागते हुए, बडे जोर शोर से किले पर धावा किया। उधर से भी बड़ी तेजी से गोले गोलियों की अविश्रांत वर्षा हो रही थी और यद्यपि आगे बढने म सिक्खों के प्राय दो सहस्र जवान खेत रहे पर अब की बिना किला लिए पीछे न मुड़ने की लोग ठान चुके थे और नामी जमजमा तोप के ढाई ढाई मन के चार गोलों ने अत को किले की दीवार का एक हिस्सा उड़ा दिया पर अफगानों ने इसके बाद मिट्टी की बडी मोटी दीवार तैय्यार कर रक्खी थी जिस पर गोलों का कुछ भी असर नहीं होता था, सो इस मोर्चा को दखल करने के लिये सिक्ख लोग नगी तलवार लिए "सत्यश्री अकाल" का उच्चारण करते हुए अफगानों पर टूट पडे और दो तरफा बिजली ऐसी तलवार तमक कर खचाखच चलने लगीं। मुजफ्फर खा के सब सिपाही मारे जा चुके थे केवल उसके सबधी और विश्वासी दो तीन सौ आदमी युद्ध मे मरना ठान कर अनहोनी वीरता दिखा रहे थे। अत को सिक्खो की ओर का एक अकाली सर्दार साधू सिंह हाथ मे तलवार लिए इस तेजी से अफगानों पर टूटा कि उन्हें पीछे हट जाना पडा और इसी मिट्टी की दीवार

भेजा। पर अमीर काबुल के वकीलों ने इस अवसर पर पचीस हजार रुपया देकर सरदार दलसिंह को वापस भेज दिया।

इन्हीं दिनो महाराज का एक सरदार खिलौर के इलाके पर चढ गया और उसने उसपर अधिकार कर लिया, पर यह इलाका अँगरेजों की सीमा के भीतर था जिसका आक्रमण करना सधि के विरुद्व था। अस्तु। जब वृटिश रेजिडेट ने महाराज का इस ओर ध्यान आकर्षित किया तो महाराज ने उस सरदार से माफी मँगवा कर मामला तय करवा दिया। उधर महाराज जब से काश्मीर से विफल होकर लौट आए थे, तब से यह मुहिम बराबर उनके जी में खटका करती थी और जब कभी हो काश्मीर का सुदर प्रात अवश्य अधिकार करना चाहिए, यह उनकी भीतरी मनशा थी। तेरहवीं शताब्दी तक काश्मीर में हिंदुओं का राज्य था। इसके बाद ढाई सौ वर्ष तक एक मुसलमानी वश काश्मीर अधिकार किए रहा और कई बार के कठिन उद्योग करने पर अत को सन् १५८८ मे विख्यात शाह-शाह अकबर ने काश्मीर पर अधिकार किया था जहाँ डेढ सौ वर्षों तक मुगलो का शासन रहा। यहाँ ग्रीष्म ऋतु मे विलासी जहाँगीर और शौकीन शाहजहाँ प्राय अपनी बेगमो के साथ आ कर रहा करते थे और भूतल पर प्रकृति के इस नदन कानन का आनद लूटते थे। इसके बाद काबुल के अहमद शाह दुर्रानी ने यहाँ अपना कब्जा जमाया और जब पहली बार महाराज ने काश्मीर पर आक्रमण किया था तब यह प्रात उसी दुर्रानी के वशधरो के अधिकार में था। इस चढाई में महाराज को जो परेशानी और दिक्कत उठानी पड़ी थी उसका हाल

पहले लिखा जा चुका है। अस्तु, दूसरी बार जब सन् १८१९ ईस्वी में महाराज को पता लगा कि आज कल वहाँ का शासक काश्मीर में उपस्थित नहीं है तो उन्होंने एक बलवान् सेना के साथ सरदार मिश्र दीवानचद और दीवान रामदयाल को काश्मीर अधिकार करने के लिये भेज दिया। यद्यपि प्रबल वृष्टि और झझावात के कारण दीवान रामदयाल की सेना-युद्ध में योग न दे सकी, पर कुछ ऐसी लड़ाई न हुई और स्थानापन्न शासक मुहम्मद जब्बार खाँ जान लेकर भाग गया और काश्मीर पर सिक्खों का अधिकार हो गया। जब ये दोनों सरदार इस शुभ संवाद को लेकर लाहौर पहुँचे तो महाराज बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने दीवान रामदयाल के पिता तथा सरदार मोकमचद के पुत्र दीवान मोतीराम को काश्मीर का गवर्नर नियत किया। इस जीत की खुशी मे लाहौर में पुन खूब नाच जलसा हुआ और रोशनी की गई। बाद को काश्मीर पर और भी एक सरदार नियत किया गया और साठ लाख रुपया वार्षिक पर काश्मीर का प्रांत इन दोनो सर्दारो को ठेके पर दे दिया गया। इस काम से निपट कर महाराज मुलतान गए। वे वहाँ के ठेकेदार की अयोग्यता का हाल बहुत दिनों से सुन रहे थे, इस लिये उसे निकाल कर उन्होंने भाई बदनसिंह को वहाँ का शासक नियत किया तथा २५०) मासिक पर दीवान सावनमल खजाने का अध्यक्ष बनाया गया।

इन्ही दिनों महाराज के घर रानी दयाकुँवर के गर्भ से दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए जिनका नाम काश्मीर और मुलतान विजय के उपलक्ष्य में कश्मीर सिंह और मुलतान सिंह रक्खा गया।

इधर महाराज का प्रियपात्र सरदार जमादार खुशहालसिंह महाराज के लिये डेरा इसमाइल खाँ और गाजी खाँ पर अधिकार कर आया जिस पर महाराज ने प्रसन्न होकर उसका ओहदा बढा दिया। इन दिनों जब महाराज मुलतान के दौरे से वापस आए थे, तो रईस मानकेरा से सफेद परी नाम की एक अति उत्तम घोड़ी भी बरजोरी छीन लाए थे। इधर तो यह सब हो रहा था उधर सदा उपद्रवी हजारा के सरहद्दी मुसलमानों ने फिर सिर उठाया। इन लोगों के दमनार्थ इस समय कुँवर शेरसिंह भेजे गए। इन्होंने वहाँ जाकर इनके सरदारों को हरा कर, कर वसूल किया, पर यह उपद्रवी कट्टर अफगान बिलकुल शांत न हुए। कुँवर शेरसिंह के पीठ मोड़ते ही ये लोग फिर उपद्रव मचाने लगे। अब की पुन कुँवर शेरसिंह और वीरवर दीवान रामदयाल की अधीनता में एक सिक्ख सेना इन लोगों का मूलोच्छेद करने के लिये भेजी गई। साथ में नामी अफसर सरदार फतहसिंह अहलूवालिया भी था। ये लोग बेखटके बढते हुए गँडागढ़ के इलाके तक चले गए जहाँ युसुफजाई और स्वात के कट्टर अफगान इनसे मुकाबला करने के लिये डटे हुए थे। जब जाकर इन सरदारों ने अपने से दुगने तिगुने अफगानों को इकट्ठे पाया तो याँ पहाड़ों में बेखटके बढ़ आने पर पछताने लगे और खाइयाँ खोद कर लड़ने लगे। उधर अफगान लोगों ने भी बडी सरगर्मी से हमला किया और दोनो तरफ खूब लोहा बजा, पर दिन भर लड़ाई के बाद सिक्खों को थक कर अपनी खाइयों में आश्रय लेना पडा। जब सब लोग प्रत्यावर्तन (Retreat) करते हुए खाइयों की तरफ

जा रहे थे तो नवयुवक सर्दार दीवान रामदयाल अपने थोडे से सिपाहियो के साथ अकेला पड़ गया और शत्रुओ ने उसे सेना के प्रधान भाग से यो पृथक् पाकर एक बारही उसकी छोटी सी टुकडी सेना को घेर लिया। वीर वर युवक राम-दयाल ने अपने को यो घेरे मे पाकर म्यान से तलवार निकाल ली और वह शत्रुओ पर टूट पडा। इसकी देखा देखी इसके साथी भी जो गिनती मे करीब पचास के थे "सत्य श्री अकाल" का हुकार करते हुए, यवनो पर टूट पड़े। खूब खचाखच तलवारें चलने लगी। एक एक सिक्ख ने दस दस अफगानो के सिर खीरे ऐसे काट कर फेक दिए और अत को एक बारही सहस्रो शत्रुओ द्वारा आक्रात होकर दीवान रामदयाल हाथ मे नगी तलवार लिए युद्ध करता हुआ अपने पचासो साथियो के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ। इनमे से एक भी न बचा।

यद्यपि अपने शूरवीर सरदार दीवान रामदयाल की मृत्यु से सिक्खो को बडा सदमा पहुँचा, पर कुँवर शेरसिंह ने सेना को बेदिल नहीं होने दिया और बडे कायदे से प्रत्यावर्तन करता हुआ वह पीछे हट आया और मार्ग मे अफगानों के जितने ग्राम पडते थे, उसने सब जला कर भस्मीभूत कर दिए। यद्यपि कुँवर शेरसिंह पीछे लौट आया था, पर इसने इस मुहासरे को बिलकुल छोडा नहीं। एक उपयुक्त स्थान पर ठहर कर वह लाहौर से सहायता की अपेक्षा करने लगा। थोडे ही दिनो मे एक प्रबल सेना के साथ सरदार हरिसिंह नलुवा शेरसिंह की सहायता को भेजा गया और इन दोनो ने मिल कर हजारा के

मुसलमानों का बिलकुल दमन कर दिया और वे लोग पहाड़ी दर्रों मे जा छिपे ।

यहाँ का प्रबंध ठीक कर जब शेरसिंह लाहौर वापस आया तो महाराज ने प्रसन्न होकर उस को पुरस्कृत करना चाहा और एतदर्थ उसकी नानी अपनी सास सदाकुँवर से कहा कि "तुम अपना इलाका अपने दोहते को दे दो।" चतुरा माई सदाकुँवर ने देखा कि उसे जिस बात का खटका था, वह अब आ पहुँची। इस लिये उसने रणजीत की बात का कुछ उत्तर न दिया, पर वह विवश थी। इस समय लाहौर से कुछ दूर शहादरे में उसके खेमे पड़े हुए थे, इस लिये वह फौरन ही रातो रात चल कर अपने किले बटाला मे पहुँच गई और अँगरेजो की शरण मे आने के लिये पत्र व्यवहार करने लगी।

अपनी सास की इस हिमाकत पर रणजीत को बड़ा क्रोध आया और उसने सदाकुँवर को अपने यहाँ बुला कर पुन उससे वही बात कही। रणजीत के सामने तो उसने स्वीकार कर लिया पर रात को फिर वह एक डोली म छिप कर भाग गई। महाराज ने फौरन पीछे अपने सवार दौड़ाए और उसे गिरफ्तार कर एक किले मे कैद कर दिया जहाँ थोड़े ही दिनो के बाद इस चतुरा और प्रतापी रमणी का देहात हो गया। महाराज ने इसका सब इलाका जप्त कर लिया और इसमे से मुख्य बटाले का इलाका कुँवर शेरसिंह को जागीर मे प्रदान किया। इसके इलाको मे से अटलगढ़ अधिकार करते समय रणजीत के सरदार दीवान देवीचद को बहुत परेशानी उठानी

पड़ी थी क्योंकि सदाकुँवर की एक लौंडी मुकेरी ने बड़ी बहादुरी से किले की रक्षा की थी।

कई इतिहासकारों ने महाराज की इस कार्रवाई की निंदा की है और कहा है कि "इतना बड़ा अधिकार पाकर महाराज को अपनी विधवा सास का इलाका यों जप्त नहीं करना था।" पर ऐसे निंदक 'राजनीति के भेद' को दूसरे के समय ताक पर रख देते हैं और एक प्रबल चतुरा रमणी के हाथ में अपने राज्य के भीतर ही इतना बड़ा स्वतंत्र अधिकार रहने देने में क्या क्या हानियाँ हो सकती हैं, इस पर जरा भी विचार नहीं करते। इसी सदाकुँवर ने लड़कपन में रणजीत को क्या क्या खेल खिलाए थे और अपने हाथ का खिलौना बनाना चाहा था, पर बुद्धिमान महाराज इसके जाल में फँस कर भी निकल गए और इसे दमन करने का अवसर ताकते रहे। इसने तो यहाँ तक चतुरता खेली थी कि कुँवर शेरसिंह और तारासिंह दो यमज पुत्रों को महाराज की औरस संतान कह कर प्रगट किया था, जब कि कई इतिहासकारों के मत से वे महाराज की औरस संतान नहीं थे और उस समय यद्यपि महाराज सदाकुँवर की चालाकी ताड़ गए थे, पर राजनैतिक कारणों से चुप कर गए, कुछ बोले नहीं, पर इस धोखे का बदला लेने की वे प्रतीक्षा कर रहे थे। सो अवसर पाकर उन्होंने इस चालबाज रमणी को बेकाम कर दिया तो अच्छा ही किया, नहीं तो न जाने आगे चलकर यह क्या क्या फिसाद खड़े करती? क्या इतिहासकारों से छिपा है कि रणजीत के बाद इन्हीं रमणियों की लीला के कारण लाहौर

का राज्य नष्ट भ्रष्ट हो गया? सो महाराज का यह कार्य्य निंदा का नहीं था वरन् जैसे उन्होंने अपनी माता को कैद करके बुद्धिमानी की थी, वैसे ही माई सदाकुँवर को भी दमन करके अच्छा ही किया। इसमें निंदा की कोई बात नहीं है। जिसे राज्य विस्तार करना है वह ऐसी ऐसी निंदाओ से डरने की अपेक्षा उस काम में हाथ ही न दे। काम पड़ने पर सब लोग अपने अपने सुभीते की कर लेते हैं और दूसरे के समय निंदा करने लगते हैं। यही ससार की रीति है।

हजारा प्रात के उपद्रवी अफगानो के दमन करने म दीवान रामदयाल की मृत्यु से उसके पिता दीवान मोतीराम को जो काश्मीर का गवर्नर था, बडा सदमा पहुँचा और अति शोकातुर हो वह सब राजकाज से हाथ खींच बैठा तथा अपने पद से उसने इस्तीफा दे दिया। महाराज ने इसके स्थान पर अपने नामी अफसर सरदार हरिसिंह नलुवा को नियत किया, पर यद्यपि यह सरदार युद्ध मे निपुण था, पर राज्यशासन के दाव घात से निरा अनजान था, इस लिये इसके उजड्ड शासन से प्रजा बिगड़ उठी। जब महाराज के पास यह खबर पहुँची तो उन्होंने हरिसिंह नलुवा को वापस बुला लिया और दीवान मोतीराम को जो काशीयात्रा की तैय्यारी कर रहा था, बहुत कुछ समझा बुझा कर पुन काश्मीर की गवर्नरी पर भेज दिया। इन्हीं दिनो महाराज के प्रियपात्र सर्दार ध्यानसिंह के भाई गुलाबसिंह ने लाहौर राज्य के एक कश्मीरी विद्रोही के मारने में बड़ी योग्यता और बहादुरी दिखाई, जिस पर प्रसन्न होकर महाराज ने इन्हें काश्मीर

ही में बारह हजार वार्षिक आय की एक जागीर प्रदान की। इस समय कौन जानता था कि यही गुलाबसिंह आगे चल कर काश्मीर का स्वतंत्र राजा हो जायगा ? वर्तमान काश्मीर नरेश महाराजा प्रतापसिंह इन्हीं गुलाबसिंह के पौत्र हैं। इन्हा दिनों कुल दुनिया की सैर करते हुए प्रसिद्ध अँगरेज डाक्टर सर मोरक्राफ्ट यारकंद जाने के लिये लाहौर पधारे। महाराज ने इनकी बहुत खातिर की और यारकंद तक इनके निरापद पहुँचने का सब प्रबंध कर दिया। डाक्टर साहब के विदा होते ही महाराज के घर और एक बड़ी खुशखबरी हुई अर्थात ता० ९ मार्च सन १८२१ इसवी के फाल्गुन मास में महाराज के बड़े पुत्र युवराज खड्गसिंह के घर पुत्ररत्न ने जन्म ग्रहण किया। इस पर महाराज ने बड़ा आनंद मनाया। नगर भर में दीपमालिका की गई और कई दिवस तक नाच रंग जलसे होते रहे तथा दीन दरिद्रों को बहुत कुछ दान दक्षिणा दी गई। महाराज ने इस होनहार बच्चे का नाम नौनिहाल सिंह रक्खा। इसके अनंतर नववर महीने में महाराज ने पुनः अपना फौजी दौरा आरंभ किया, क्योंकि अधीनस्थ रज-वाड़े बिना सैन्य संधान किए नजराना नहीं देते थे। अस्तु। आठ हजार प्रबल सेना के साथ भक्खर का नामी किला फतह करते हुए और डेरा इस्माइल का परिदर्शन करते हुए महाराज मानकेरा पहुँचे। यहाँ के उपद्रवी नवाब ने पुनः नजराना इत्यादि देना बंद कर दिया था। अस्तु। राह में कई इलाके दखल करते हुए महाराज ने मानकेरा का इलाका जा घेरा। यहाँ का नवाब फाटक बंद करके भीतर से गोले

दागने लगा। इधर से महाराज की तोप भी आग उगलने लगी। इस बार की लड़ाई में सिक्खों को पानी की बड़ी तकलीफ थी। एक डिवीजन सेना केवल पानी लाने पर तैनात थी, तिस पर भी पूरा नहीं पड़ता था। जब महाराज ने पानी का बहुत अभाव देखा तो सिपाहियों को कच्चे कुएँ खोद लेने की आज्ञा दी। बात की बात में सिक्ख जवानों ने कई कच्चे कुएँ खोद डाले और यों जल का कष्ट निवारण हो गया। उधर लड़ाई बड़ी सरगरमी से जारी थी। इसी बीच में शत्रु की तरफ के कुछ भेदिए महाराज से आ मिले और उन्होंने किले के कमजोर भाग का पता देकर उसी पर गोले दागने को कहा। उनके बतलाए हुए मुकाम पर दो चार गोले दागते ही किले का पतन हो गया और नवाब हार मान कर गले में दुपट्टा डाले हाथ जोड़ता हुआ महाराज की शरण आया। उसने आकर विनय की कि मेरा सब इलाका और सर्वस्व आपकी सेवा में अर्पण है, पर कृपा पूर्वक मेरे इलाके में लूट न करवाइए और मेरी बहादुर सेना को अपनी सेवा में अंगीकार कीजिए। महाराज ने उसकी दोनों शर्तें स्वीकार करके उसका कुल इलाका दखल कर लिया और अपने चचेरे भाई अमीरसिंह सिंधानवालिया को वहाँ का गवर्नर बनाया और नवाब मानकेरा के निर्व्वाहार्थ डेरा इस्माईलखाँ का इलाका प्रदान कर दिया। भक्खर का नामी इलाका राजकुँवर नामक एक खत्री को ठेके में दिया गया और तत्पश्चात् महाराज ने भावलपुर की ओर कदम बढ़ाया। नवाब भावलपुर महाराज का आगमन सुनते ही पाँच लाख

रुपया नजराना लेकर हाजिर हुआ और उसने महाराज को अपनी मित्रता का विश्वास दिलाया। यह सब काम निपटा कर सन् १८२२ ईसवी के जनवरी मास में महाराज लाहौर वापस आए। इन्हीं दिनो सर्दार हरिसिंह नलुवा को काश्मीर में दो इलाके जागीर में दिए गए।

इन्हीं दिनो महाराज के दर्बार में मनचुरा, अलडरेडो, कोरटी और अटोर्टीवल नाम के चार फ्रेंच अफसर नौकरी की तलाश में आए। इनमें से कोरटी फ्रांस के विख्यात सम्राट नेपोलियन का एक नामी अफसर था और उस सम्राट के पतन होने पर भाग्यपरीक्षार्थ भारतवर्ष में चला आया था। इन लोगों को महाराज ने बड़ी खातिर से अपने यहाँ रक्खा और चूँकि अपनी सेना को वर्तमान युरोपियन ढग की युद्ध विद्या से निपुण करने की उनकी आतरिक इच्छा थी, इसलिये इन चारों फ्रेंच अफसरों को दो दो हजार रुपए मासिक पर महाराज ने अपने यहाँ नौकर रख लिया। इसके सिवाय इन लोगों को पीछे से पुरस्कार में जागीरें और खिल्लतें इत्यादि भी मिलती रहती थी, पर सबों से यह प्रतिज्ञा करवा ली गई थी कि जब तक महाराज की सेवा में रहेंगे 'गो मास भक्षण नहीं करने पावेंगे', दाढ़ी मुड़वाने और सीगरेट पीने की भी कठिन मनाई थी। दिन काटने के लिये इन लोगों ने यह भी स्वीकार किया और वे महाराज की सेना को नवीन युरोपियन ढग की युद्धविद्या और कवायद सिखाने लगे। पहले पहल सिख लोगों ने युरोपियन पोशाक और अस्त्र धारण कर कवायद करने से अनिच्छा प्रगट की, पर एक दिवस जब महाराज

स्वयम् युरोपियन ड्रेस पहन कर कवायद करने लगे तब तो सब सेना को विवश हो यह नवीन रीति अगीकार करनी पड़ी और थोड़े ही दिनो में इन फ्रेंच अफसरों ने पचास हज़ार सिक्ख सेना को युरोपियन ढग की युद्धविद्या में ऐसा निपुण कर दिया कि वह किसी भी युरोपियन शक्ति से सामना करने के योग्य हो गई। साथ ही महाराज के तोपखाने की भी उन्नति यूरोपियन ढग से की गई और युद्ध का यह प्रधान आवश्यक विभाग भी किसी यूरोपियन तोपखाने से न्यून नहीं रहा। इन बातों से यह साबित होता है कि प्रबल शक्ति से मित्रता बनाए रखने के लिये अपनी शक्ति भी वैसी ही प्रभाव शालिनी बनाए रखना उचित है, नहीं तो वह मित्रता टिकती नहीं है, क्यों कि कहा ही है कि "वैर, विवाह और प्रीति समान ही वाले से ठीक निभती है"।

इन्हीं दिनो जबू के हाकिम किशोरसिंह के मरने का समाचार आया। महाराज ने उसके पुत्र गुलाबसिंह को राजा की पदवी दे कर उस पद पर बहाल किया। इनका भाई ध्यानसिंह पहले ही से महाराज का बड़ा प्रियपात्र था। महाराज ने उसे भी राजा की पदवी दे कर अपना खास मन्त्री (Private Secretary) नियत किया और उसके तीसरे भाई सुचेतसिंह को सेनापति की पदवी प्रदान की। इन्हीं दिनो काश्मीर के पास सरदार हरिसिंह नलुवा को जो जागीरे दी गई थी उनमें विद्रोह खडा हुआ जिसे इस कट्टर और शूरवीर सर्दार ने बडी कठोरता से दमन कर दिया। थोड़े ही दिनो में विजया दशमी आ पहुँची। नियमपूर्वक इस त्योहार को मना कर

महाराज ने इस दिन अपनी कुल सेना और तोपखानों का परिदर्शन (*Review*) किया और हरएक कंपनी के सिपाही उनकी वर्दी, शस्त्र, सवारी के घोड़े, तोपखाने के सब सामानों को देखा और जांचा। इस विषय में महाराज बड़े मुस्तैद रहते थे, जरा सी भी गलती या कमी तुरत उनका ध्यान आकर्षण कर लेती थी, यहाँ तक कि इस अवसर पर एक पुराने नामी सरदार दलसिंह की सेना पूरी तरह सज्जित न थी, जिस पर महाराज उस सरदार पर बहुत असंतुष्ट हुए और उन्होंने उसे सामने बुला कर उसका बड़ा तिरस्कार किया। यह बड़ा पुराना और अनुभवी सरदार था और पाठक गण भी कई अवसर पर युद्ध के मौको पर इसका जिक्र पढ चुके होंगे, सो महाराज के तिरस्कार से यह ऐसा दुःखित हुआ कि इसने घर जाकर आत्महत्या कर ली। कुल सेना का परिदर्शन करने के बाद महाराज ने पेशावर के हाकिम यार मुहम्मद खां से बकाया कर का रुपया मांगा जो कि एक वर्ष का बाकी पड गया था। उसने कहला भेजा कि, इस समय मेरे पास रुपया नहीं है, आप कुछ दिनों के लिये माफ करें। उसने थोड़े से अच्छे अच्छे घोड़े महाराज को संतुष्ट करने के लिये भेज दिए। उधर काबुल का वजीर मुहम्मद अजीम खां जो अवसर ढूँढ रहा था मौका पाकर एका-एक पेशावर पर चढ आया। यार मुहम्मद खां महाराज का अधीनस्थ शासक सामना करने की हिम्मत न कर सका और नगर छोड़ कर पहाड़ों में भाग गया। जब महाराज को इसकी खबर लगी तो वे बहुत नाराज हुए और कुँवर शेर-

सिंह तथा सरदार हरिसिंह नलुवा, बुद्धसिंह सिंधवालिया और करनल मेंटुरा के अधीन एक प्रबल सिक्ख सेना पेशावर के उद्धारार्थ भेज दी। मुहम्मद अजीम खा ने सिक्खो का आगमन सुन कर दीन मुहम्मदी झंडा खडा किया और अपनी कावुली सेना के सिवाय आस पास की पहाड़ियों के सहस्रों कट्टर लड़ाके अफगान बटोर लिए। सिक्खों ने पहुँचते ही अटक के पास अफगानो पर हल्ला बोल दिया और बडे जोर से आक्रमण किया। अफगानों के पैर उखड गए, पर मुहम्मद अजीम खा पुन इन लोगो को लौटा लाया और अब की बार कई सहस्र प्रबल अफगानो के साथ उसने सिक्खों पर हमला किया। दो तरफा गोला गोली और तलवार की खूब लड़ाई हुई और सिक्ख लोग कुछ पीछे हट गए। महाराज को जब यह समाचार पहुँचा तो अपनी कुल सेना के साथ युवराज खड्गसिंह को साथ लेकर वे रणभूमि का ओर रवाना हुए। यह लडाई बडी मार्के की थी क्योंकि काबुल के अफगान और सिक्ख इन दोनो के बल की परीक्षा इसी लडाई मे हुई थी और सदा के लिये यह भी तय हो गया था कि पेशावर के इलाके म सिक्खों का राज्य रहेगा या अफगानों का ? अस्तु, महाराज मारो मार अटक पर पहुँचे और अटक नदी पर से हाथियों पर लदवा कर तोपे पार करवाई और कुल सेना के पार कराने का प्रबंध करने लगे, पर एक तो किश्ती कोई न थी, दूसरे यह पहाडी नदी पगली नदी के नाम से विख्यात थी, कभी एकाएक बढ आती और कभी घट जाती थी। लोग आपस में सलाह कर ही रहे थे कि महाराज ने सारी

सेना को अपने पीछे पीछे आने की आज्ञा देकर तत्काल ही अपना घोड़ा अटक में डाल दिया और पानी घोड़ों के घुटनों से ऊपर न पहुँचा, तब तो सारी सेना बड़ी विस्मित हुई और महाराज के पीछे पीछे चल पड़ी। यों ही सारी सेना पार उतरने लगी। जब तक महाराज की घोड़ी नदी में थी, पानी घोड़ों के घुटने ही तक रहा पर ज्योंही महाराज पार पहुँचे कि इस पहाड़ी नदी में एकाएक ऐसी बाढ आई कि जहाँ घुटने घुटने तक पानी था वहाँ हाथीडुबान जल हो गया। जो थोड़ी सी सेना पार होने से रह गई थी वह बहने लगी। इस प्रकार पाँच सौ सिक्ख जवाँन बह कर कहाँ चले गए, कुछ पता न लगा। अटक पार करने के बाद महाराज को पता लगा कि मुहम्मद अजीम खा के जेहादी झंडा खड़ा करने के कारण बीस हजार प्रबल लड़ाकू अफगान पेशावर और नोशेरा के बीच येरी नामक मुकाम पर जमा हैं। वह मुकाम एक पहाड़ी पर था जहाँ ये लोग इकट्ठे हो रहे थे। महाराज ने उक्त पहाड़ी को दोनों तरफ से घेर कर आक्रमण करने की आज्ञा दी और जनरल मनचूरा और अलडरेडो को एक प्रबल सेना के साथ, उस ओर भेज दिया, जिधर से यह प्रबल खाँ अपनी काबुली सेना को इन सरहद्दी पठानों से मिलाने को आ रहा था। इधर महाराज ने अपनी सेना के कुछ चुने हुए जवानों को अलग छिपा कर (Reserve) रख छोड़ा और बाकी के सिपाही अफगानों पर गोली चलाते हुए, पहाड़ी पर चढने लगे। ऊपर से यह कट्टर अफगान भी मुस्तैदी से गोला बरसाने लगे। मौका पाकर बड़ी

बड़ी पत्थरों की शिलाएँ भी वे सिक्खों पर लुढ़का देते थे। सिक्ख लोग जब पहाड़ी पर चढ़ने की चेष्टा करते तो गोली और शिला की वह वृष्टि होती कि हार कर पीछे हट आते थे। कई बार अकालियों का वीरवर सर्दार फुला सिंह अपने सिपाहियों को ललकार कर ऊपर ले गया पर हर बार इन लोगों को पीछे हटना पड़ा और इसी हटा नदी में फुलासिंह वीर गति को प्राप्त हो गया। दूसरी ओर के सिक्ख इधर वालों से अधिक काम कर सके और पहाड़ी के ऊपर चढ़ गए और बड़ी मुस्तैदी से ठेल ठाल कर एक ताप भी ऊपर जा चढाई जिसके गोला न अफगानों के पैर उखाड़ दिए और ये लोग दूसरी तरफ से भाग कर नीचे उतर आए। अब तो इधर वाले सिक्खों की बन आई। एक बारही उन्होंने अफगानों पर गोलियों की बाढ दाग दी और पीछे से रणजीत की रक्षित (Reserved) सेना का तोपखाना गर्जन करने लगा। इस प्रकार से महाराज ने इन अफगानों को तीन ओर से घेर कर मारना आरभ किया। इधर तो एक विलक्षण सेनापति के रूप में स्वय रणजीत विद्यमान थे और उधर अफगानों के सिर पर कोई चतुर सेनापति न था, इसलिये बड़ी वीरता दिखाने पर भी बहुत से अफगान मारे गए और बाकी के जी छोड़ कर भाग निकले। इधर के भी दो हजार सिक्ख जवान काम आए, जो युद्ध की भीषणता को देखते हुए बहुत नहीं थे। उधर जेनरल मेनचूरा इत्यादि ने भी बड़ी सफलता से काम किया। मुहम्मद अज़ीम खा के सिपाही किश्तियों पर काबुल नदी पार हो रहे थे, जिसे तोप के गोलों से जनरल साहब ने डुबा दिया और

इस मुस्तैदी से मार्ग रोका कि खाँ की हिम्मत आगे बढने की न पडी और वह अपना सा मुँह लेकर काबुल की ओर भाग गया। अस्तु इस भीषण युद्ध मे विजयी हो कर ता० १९ मार्च को सिहनाद करती सिक्खों की सेना अफगानो के इलाको म घुस पडी और उसकी खूब जी खोल कर लूट पाट की, केवल महाराज की आज्ञा से पेशावर की प्रजा इस उत्पीडन से बच गई। यार मुहम्मद खाँ जो पहाडो मे भाग गया था लौट आया और नजराने का सवा लाख रुपया और गौहर नाम का एक अत्युत्तम रणतुरग महाराज को उसने अर्पण किया। महाराज इसे पूर्ववत् पेशावर की गवर्नरी पर नियत कर के लाहौर वापस आए और जीत की खुशी मे उन्होने खूब आनद उत्सव मनाया और अमृतसर मे स्नान दर्शन करके पचीस हजार रुपया भेंट चढाया तथा दीन दुखियों को हजारो रुपए लुटाए। इन्हीं दिनों सन् १८२३ ई० मे महाराज ने अमृतसर की शहरपनाह बनवाने की इच्छा प्रगट की ओर उनके आज्ञानुसार सब सर्दारों ने इस काम मे द्रव्य से सहायता की और थोडे ही दिनों मे यह सुदृढ शहरपनाह बन कर तैयार हो गई। इसीके कुछ दिन बाद कॉगडे के राजा ससारचद के परलोकवास होने का समाचार आया। महाराज को उसके पुत्र ने एक लाख रुपया नगद नजराना दिया और एक लाख और देने की प्रतिज्ञा करके वह अपने राज्य पर कायम हुआ।

ठीक इसी के बाद अमृतसर का विख्यात महाजन रामानद जो पहले महाराज का खजाची था, मर गया। कोई वारिस न होने के कारण उसकी आठ लाख की सम्पत्ति महा

राज ने जब्त कर ली। इन्हीं दिनों महाराज के एक नामी सर्दार मिश्र दीवानचंद का परलोकवास हो गया। इसने कई अवसरों पर लाहौर राज्य की अच्छी सेवा की थी और वह बड़ा प्रतिष्ठित सर्दार गिना जाता था। महाराज को इसकी मृत्यु का बड़ा शोक हुआ और उनकी आज्ञा से बड़े बड़े सर्दार राजा ध्यानसिंह इत्यादि नंगे पैर शवयात्रा में शामिल हुए। इसके स्थान पर महाराज ने इसके भाई सुखदयाल को नियत किया। इसके बाद महाराज ने पहाड़ी राजाओं का नजराना ड्योढा कर दिया और इस साल उन लोगों से सत्तर हजार रुपए वसूल किए गए। उधर कुछ दिनों तक तो पेशावर में शांति रही, पर थोड़े ही दिनों बाद अफगानों के फिर कुछ उपद्रव खड़ा करने के समाचार आए। महाराज तुरत ही अपनी प्रबल सेना के साथ वहाँ पहुँच गए और उन्होंने इन उत्पातियों को दमन कर पहाड़ों में भगा दिया। इनमें से बरकजाइयों के गरोह का सदार हाथ जोड़ कर महाराज के सामने हाजिर हुआ और उसने यह प्रतिज्ञा की कि आगे से अब ऐसा उपद्रव उसके गरोहवाले नहीं करेंगे। इन्हीं दिनों काश्मीर के गवर्नर दीवान मोतीराम से कुछ अपराध हो गया जिस पर चिढ़ कर महाराज ने उस पर सत्तर हजार रुपया जरिवाना किया और उसके लड़के को कैदखाने में डाल दिया तथा सर्दार गुरुमुखसिंह और दीवान चुन्नीलाल को दो लाख पचहत्तर हजार रुपए वार्षिक पर काश्मीर का ठेका दे दिया, पर इन लोगों से भी ठीक इतजाम न हो सका, इसलिये पुन दीवान कृपाराम को काश्मीर का गवर्नर बनाया गया। इसने काश्मीर में कई

अच्छी अच्छी इमारतें बनवाई थीं, जिनमें से श्रीनगर का रामबाग जो राजा गुलाबसिंह के स्मृतिचिन्ह स्वरूप अब तक विद्यमान है, इसी के द्वारा लगाया गया था। इन्हीं दिनों महाराज के युरोपियन अफसर जनरल मेंटूरा का विवाह लुधियाने की एक फ्रेंच लेडी से हुआ था जिसके लिये महाराज ने तीस हजार रुपया दिया था। इस के कुछ दिन बाद संवत् १८८३ विक्रमी मे महाराज के प्रियपात्र सर्दार जमादार खुशहाल सिंह ने कटलेर का इलाका अधिकार कर लाहौर राज्य में शामिल किया। यहाँ के राजा को बारह हजार की जागीर दी गई। नूरपुर का राजा जो भागकर अँगरेजी रियासत मे चला गया था, इन दिनों कुछ सेना इकट्ठी कर अपने इलाके पर अधिकार करने आया, पर महाराज के सर्दारों ने उसे पकड़ कर कैद मे डाल दिया। सरहद्दी पठानों ने फिर कुछ उत्पात मचाया जिसे दमन करने के लिये जनरल मेंटूरा और सर्दार हरिसिंह नलुवा भेजे गए और गडगढ के निकट इन्होंने पठानों को हरा कर उनके कई इलाके जब्त कर लिए। लौटते हुए राह में इन लोगों ने श्रीकोट के किले पर भी अधिकार जमा लिया। इसके बाद महाराज ने कुँवर शेरसिंह को इनके साथ देकर पेशावर से वार्षिक कर वसूल करने भेजा। इन लोगों के पहुँचने की खबर मिलते ही पेशावर का हाकिम यार मुहम्मद खाँ कर का रुपया लेकर हाजिर हुआ, इसके सिवाय इसी अवसर पर नव्वाब भावलपुर, मानकेरा और मंडी के राजाओं के अंतकाल होने पर महाराज ने इनके वारिसों से सब मिला कर नौ लाख रुपया नजराने का वसूल किया। इसी वर्ष के

अत मे महाराज एकाएक बहुत अधिक बीमार हो गए, पर लुधियाने का एक डाक्टर सौ रुपए रोज पर बुलाया गया और इसके इलाज से महाराज चगे हो गए।

यद्यपि सरहद्दी अफगान कई बार दमन किए गए और हराए गए थे और उनका एक सर्दार शांति रखने का वचन भी दे चुका था, पर इस बार पुन किसी कारण से भयकर विद्रोह खडा हो गया। बात यह थी कि बरेली निवासी सैय्यद अहमद नामक एक फकीर को सिक्खों का बल बढ़ते और इसलामियों का घटते देख कर बडी डाह पैदा हुई और रात दिन इसी सोच मे रहते रहते उसे उन्माद सा हो गया तथा कुछ ही दिनो मे यहाँ आ कर उसने अफगानों के बीच जहाद का मत्र फूँकना प्रारभ किया, जिससे सदा के उद्धत स्वभाव पठानों ने पुन उपद्रव मचाना आरभ कर दिया। महाराज ने यह सवाद पा अपने दो सर्दारों को चार तोपे देकर इसे दमन करने भेज दिया। शाहसाहब अपने दलबल के साथ सामने आए पर सिक्खों की तोपो ने वह आग उगलनी शुरू की कि उन्हे भाग कर कदराओ मे छिप जाना पड़ा। इन्हीं दिनों महाराज को यह खबर लगी कि पेशावर के गवर्नर यार मुहम्मद ख़ाँ के पास 'लीली' नाम की एक अति उत्तम घोड़ी है जिसका मूल्य फारिस का शाह पचहत्तर हजार रुपए देता था, पर तौ भी ख़ाँ ने उस घोड़ी को बेचना स्वीकार नहीं किया। महाराज को स्वय उम्दा घोड़े का बेहद शौक था, इस लिये ख़ाँ से उन्होने वह घोड़ी मँगवाई। ख़ाँ जो कि उस घोड़ी से अत्यत प्रीति रखता था, रणजीत का सँदेसा सुनते ही काठ

हो गया और 'घोड़ी तो मर गई' ऐसा मिथ्या सवाद उसने लिख भेजा। महाराज को इस घोड़ी के जीते रहने का पका पता लग चुका था, इस लिये उन्होंने खाँ की बातो का विश्वास नहीं किया और कुँवर शेरसिंह तथा जनरल मँटूरा को एक सेना के साथ घोड़ी लाने भेज दिया। सिक्ख सेना के चढ आने का समाचार सुनते ही यारमुहम्मद खाँ भाग कर पहाड़ों मे चला गया और कुँवर शेरसिह अपनी सेना के साथ पेशावर में प्रविष्ट हुए और आठ मास तक वहा पर टिके रहे, पर 'लीली' नामक घोडी का कुछ पता न लगा। अत को खाँ के भाई सुलतान मुहम्मद खाँ ने एक लाख रुपया नगद और 'शीरीं' नाम का एक अन्य घोडा देकर इन दोनों को विदा किया। ये लोग भी उसी के जिम्मे पेश वर का इतजाम सिपुर्द कर लाहौर वापस चले आए। इन्हीं दिनों काश्मीर मे एक बडा भारी भूकप आया था जिसमें करीब डेढ लाख के मनुष्य मर गए थे। उधर पेशावर की ओर स जब पुन कुछ उत्पात की खबर आई तो उसे दमन करने के लिये महाराज ने कुमार शेरसिह के साथ जनरल अलड्डरेटो, मटूरा तथा एक प्रबल सेना भेज दी। यह सेना मारामार पेशावर तक पहुँच गई और सिक्खों की ओर का एक सर्दार दीवान धनपत राय बिना शेरसिह की आज्ञा लिए अपनी इच्छा से अटक पर चढ गया और उस प्रात के कई इलाके उसने अधिकृत कर लिए। जब नजराने के रुपए के लिये कुँवर शेरसिंह ने हाकिम पेशावर पर दबाव डाला तो उसने कहला भेजा कि "सारा मुल्क तो आपके दीवान ने दखल कर रक्खा है, मैं कहाँ से रुपया वसूल कर आपको

नजराना दूँ" । इस उत्तर के आने पर कुमार शेरसिंह ने दीवान वनपतराय को अपने पास बुलवाया, पर वह यह कह कर नहीं आया कि "अधिकृत प्रांत छोड़ कर नहीं आ सकता और कुछ आपके अधीन नहीं हूँ जो बात बात में आपकी आज्ञा मानता रहूँ । मैं सिवाय महाराज के और किसी की आज्ञा नहीं मानूँगा" । कुमार शेरसिंह उसकी दिमाकत पर बहुत असतुष्ट हुए और उन्होंने तत्काल ही उसे बाँधकर सामने लाने का आदेश किया । थोड़े ही दिनों में वह बाँध कर कुमार के सामने लाया गया और कुमार की आज्ञा से उसे खूब जूते लगाए गए । इधर जनरल मेंटूरा को जब पता लगा कि 'लीली' घोड़ी जीती मौजूद है तो उन्होंने हाकिम पेशवार से पुन उसके लिये कहा । उसने नजराने का एक लाख रुपया देकर तीन महीने बाद घोडी देने का वचन दिया । अब एक अवसर ऐसा आया कि नादौन (काँगड़े) के राजा का सब इलाका जब्त किया गया । कारण यह था कि महाराज के डेवढीदार जमादार खुशहाल के अधीन गुलाबसिंह और ध्यानसिंह नाम के दो डोगरे राजपूत सिपाही आगे दौडनेवाले हरकारो में नौकर हुए थे । ये दोनो बडे खूबसूरत जवान थे जिससे थोडे ही दिनो मे महाराज की दृष्टि इनकी ओर आकर्षित हुई और हरकारे से ध्यानसिंह डेवढीदार बना दिया गया । अब इसका भाग्य चमक चला और थोडे ही दिनो मे यह महाराज का मुँह लगा मुसाहिब और अंत को राजा की पदवी पाकर प्रधान अमात्य (Chief Secretary) के उहदे पर पहुँच गया। काश्मीर के कई पहाड़ी

इलाको पर अधिकार करने के कारण महाराज ने इसके भाई गुलाबसिंह को जम्मू का इलाका जागीर में प्रदान किया था जिसका हाल अन्यत्र लिखा जा चुका है। इन्हीं राजा ध्यानसिंह का एक बारह वर्ष का बालक हीरासिंह बड़ा सुंदर था जिसे महाराज सर्व्वदा अपनी आँखो के सामने कुर्सी पर बैठाए रहा करते थे और उसकी बालोचित सरल बातें सुन सुन कर प्रमुदित होते थे। एक दिन महाराज ने राजा ध्यानसिंह से कहा "क्या राजा जी हीरु के विवाह का कहीं ठीक किया या नहीं।" ध्यानसिंह बोले कि "सरकार! इस तरफ हमारी बिरादरी और बराबरी का सिवाय राजा नादौन के कोई नहीं है और उसकी दो युवा बहने बहुत सुंदरी मौजूद भी हैं, राजा नादौन बड़ा घमडी है, मेरे कहने से स्वीकार नहीं करेगा। हाँ यदि सर्कारी दबाव पड़े तो मान भी सकता है।" महाराज ने तत्काल ही राजा नादौन के पास यह सदेसा भेजा। उसन यह सबंध अपने योग्य न समझ कर अस्वीकार किया और वह आप भाग कर अँगरेजों के इलाके में चला गया। महाराज उसकी हिमाकत पर बहुत नाराज हुए और उन्होंने उसकी सब जायदाद जब्त कर ली, पर जब उसकी दोनो युवा-बहिने गिरफ्तार होकर लाहौर आई तो उनकी सुंदरता पर रणजीत सिंह मोहित हो गए और उन्होंने सन् १८२९ ईस्वी में स्वयम दोनो से विवाह कर उन्हे अपनी रानी बना लिया। इस विवाह के बाद महाराज ने राजा अनुरोधचद्र का सब इलाका उसे वापस दे दिया। अब महाराज ने पुन जनरल वेंटुरा को पेशावर घोड़ी लेने के लिये भेजा। जनरल

मेंटूरा जब पेशावर पहुँचे तो वहाँ उन्होंने और ही गुल खिला पाया। वह यह था कि सय्यद अहमद जो दो वर्ष पहले सिक्खो से हार कर पर्व्वतों मे जा छिपा था, इस मौके पर पुन उत्पात मचाने लगा और उत्पाती अफगानो को भडका कर उसने यार मुहम्मद खाँ और उसके भाई सुलतान मुहम्मद दोनो को मरवा डाला और उनके सब इलाके मय पेशावर के दखल कर लिए। जनरल मेंटूरा ने वहाँ पहुँचते ही सय्यद अहमद को मार भगाया और यार मुहम्मद के एक दूसरे भाई शेर मुहम्मद खाँ को पेशावर का हाकिम बना कर वह लौट आया, पर इसके पीठ मोडते ही सय्यद साहब अपने दल बल सहित पुन पेशावर पर चढ आए और शेरमुहम्मद को निकाल कर आप वहा के हर्ता कर्ता बन बैठे, तथा काश्मीर पर भी चढ़ाई करने की तय्यारी करने लगे, किंतु वहा से मार खा कर पेशावर भाग आए। जब महाराज को इसकी खबर लगी तो वे स्वयम् अपनी सेना के साथ पेशावर गए। सिक्खों का आना सुन कर पुन: शाह साहब पहाडों में भाग गए, पर महाराज के वापस जाने पर फिर उसने उत्पात मचाना आरभ किया और पेशावरवालों से नजराना वसूल करना चाहा। यहाँ पेशावरवालों ने एक चाल चली। बात यह थी कि सय्यद अहमद मुसलमानों के 'वहाबी' फिरके को मानता था जो मुसलमानो के बहुत से प्रचलित विश्वासो का नहीं मानते, इसलिये वहाँ के मुल्लाओं ने प्रजाओं को भडका कर सय्यद साहब को पेशावर से निकलवा दिया, पर शाह साहब वहाँ से निकाले जाकर हजारा की पहाड़ियों में उत्पात मचाने

लगे। जब महाराज को इसकी खबर लगी' तो हरिसिंह नलूवा इत्यादि कई नामी अफसरो को भेज कर अब की बार उन्होंने सय्यद साहब का काम तमाम करवा दिया और उस का सिर काट कर महाराज के पास लाहौर भेज दिया गया। यों सदा के लिये इस उत्पाती सय्यद का अत हो गया। इसके कुछ दिन बाद जनरल मेटूरा भावलपुर भेजे गए, उन्होंने लगे हाथ डेरा गाजीखाँ का उ लाख का इलाका भी जप्त कर लाहौर राज्य में शामिल कर दिया और नव्वाब भावलपुर से एक लाख रुपया नजराने का वसूल करके लाहौर वापस आए। इधर काश्मीर के नाजिम की शिकायत पहुँची कि वह ठीक इतजाम नहीं कर सकता है, अतएव उसे हटा कर उसकी जगह कुँवर शेरसिंह और जमादार खुशहाल सिंह भेजे गए, पर जब इनसे भी ठीक प्रबध न हो सका तो सर्दार मीया सिंह को कश्मीर भेजा गया। इसने जाकर वहा का सब प्रबंध ठीक कर दिया। इसके बाद सवत १८८९ विक्रमी म शाह सूजा लाहौर आया और खुरासान पर चढाई करने के लिये उसने महाराज की सहायता चाही, पर महाराज ने इस पुराने शत्रु का विश्वास न किया और सारा समाचार काबुल को लिख भेजा। अस्तु, सूजा को जब यह खबर लगी तो वह पुन भाग कर लुधियाने चला गया। इन्हीं दिनो सक्खर का प्रदेश महाराज के अधिकार मे आया जो डेढ लाख रुपए वार्षिक पर जनरल मेटूरा को दे दिया गया। सवत् १८९१ विक्रमी मे बन्नू के पठानो ने पुन विद्रोह खड़ा किया जिसे दमन करने के लिये महाराज ने अब की बार अपने होनहार

पौत्र कुँवर नौनिहाल सिंह के साथ जनरल मेटूरा, कोरटी और सर्दार हरिसिंह नलुवा को भी भेजा और यह आज्ञा दे दी कि अब की बार अफगानों को खूब शिक्षा देना जिसमे आगे के लिये शात रहे और वार वार पेशावर पर आँख उठाने की हिम्मत न करे। अस्तु ता० ६ मई सन् १८३४ ईसवी को ये लोग पेशावर पहुँच गए उस समय अफगानो के उपद्रव के कारण पेशावर की प्रजा भागने को तैय्यार थी तथा वहाँ का मुसलमान हाकिम भाग गया था। अस्तु वहा-पहुँचने पर पहले सिक्खो ने अच्छी तरह पेशावर पर दखल जमा कर वहाँ से अफगानो के दमन करने का कार्य्य आरभ किया। थोडे ही दिनो मे महाराज स्वयम् भी राजा गुलावसिंह के सग पहुँच गए और यहाँ से पठानों पर लगातार आक्रमण होने लगे, यहाँ तक कि सिक्खो ने अमीर काबुल के अधीन के सारे इलाके खैवर घाटी तक अपने अधिकार मे कर लिए। अमीर काबुल यह समाचार सुन कर बडी धूमधाम से अपनी सेना लेकर चढ़ आया और उसने रणजीतसिंह से इस तरह अनुचित बैर ठानने का कारण पूछा। जब महाराज ने कुल हाल बयान करने के लिये अपने दूत दोस्त मुहम्मद को अमीर काबुल के पास भेजा तो उसने धोखे से इन लोगो को कैद कर लिया पर ये लोग किसी तरह भाग कर निकल आए और उन्होंने सारा समाचार महाराज को आ सुनाया। महाराज अमीर काबुल का कपट व्यवहार सुन कर बहुत असतुष्ट हुए और उन्होने तत्काल ही अमीर की सेना पर फायर करने की आज्ञा दे दी। अब क्या देर थी। खूब दो तरफा अग्निवृष्टि हुई पर महाराज

की सुशिक्षित सेना के आगे उजड्ड पठानों के पैर न टिक सके और दोस्त मुहम्मद खां अपना मुँह लेकर काबुल को भाग गया। इसके बाद महाराज ने पेशावर के किले और सफीलों पर सब ओर से तोपें चढ़वा दीं और एक युरोपियन जनरल तथा सरदार हरिसिंह नलुवा के अधीन एक जबरदस्त फौज पेशावर की रक्षा के लिये छोड़ कर आप लाहौर वापस आए। इस मुहिम पर योग्यता दिखाने के कारण कुँवर नौनिहालसिंह को एक लाख की जागीर दी गई। १८९३ संवत में महाराज फिर दो बार पेशावर गए और पुराने गवर्नर सुलतान मुहम्मद खाँ को तीन लाख की जागीर दे आए। यहां से वापस आने पर महाराज को एकाएक लकवा मार गया और वे बहुत सख्त बीमार हो गए पर ज्यों त्यों कर बहुत कुछ इलाज करने पर यह बीमारी आराम हुई और आराम होने की खुशी में महाराज ने गरीब दरिद्रों को खूब जी खोल कर द्रव्य लुटाया और आनंद उत्सव मनाया। इन दिनों महाराज का प्रताप इतना चढ़ा बढ़ा था कि राजा गुलाबसिंह के दीवान जोरावरसिंह ने चीन पर चढ़ाई करने के लिये महाराज की आज्ञा माँगी, पर उसकी बात बे सिर पैर की समझ कर महाराज ने स्वीकार नहीं की। इन्हीं दिनों महाराज के अधीन मुल्तान के सूबेदार ने सिंध देश के कई इलाके अधिकृत कर लिए थे, पर जब पीछे से मालूम हुआ कि ये सब इलाके अँगरेजी अमलदारी में पड़ते हैं तो महाराज ने वहाँ से अपनी सेना बुलवा ली।

इसके बाद हाकिम पेशावर का भाई पीर मुहम्मद खाँ

महाराज के दर्शन के लिये आया। इसके साथ बारह हजार पठान सवार थे, जिन सबों ने फौजी रीति के अनुसार महाराज की सलामी उतारी और इसने बड़ी प्रतिष्ठा के साथ महाराज को नजर दी। महाराज ने उसका सत्कार कर तथा खिल्लत इत्यादि देकर उसे बिदा किया। उधर पेशावर में महाराज के नामी सर्दार हरिसिंह नलूवा ने काबुल का नामी जमरूद का किला दखल करके सफीलों पर तोपें चढ़वा दीं और इस प्रकार खैबर घाटी पर अपना पूरा अधिकार जमा लिया। इस सरदार का बड़ा दबदबा था। पठान तो इसके नाम से काँपते थे। जब अमीर काबुल ने जमरूद के किले अधिकृत के होने का समाचार सुना तो एक बारही वह तलमला उठा और उसने अपनी प्रबल अफगानी सेना के साथ दौड़ादौड़ आकर जमरूद का किला घेर लिया। सरदार हरिसिंह नलूवा इस समय ज्वर से पीड़ित पेशावर में पड़ा हुआ था और उसका नौजवान लड़का किले में मौजूद था। उसने किले का फाटक बंद करके वह गोले बरसाए कि पठानों के छक्के छूट गए। कई बार पठानों ने बड़े जोर से चढ़ाई की पर जब वे किले के पास आए तो तोपों की कड़ी मार के आगे उनके पैर न टिक सके और उन्हें पीछे मुड़ना पड़ा। यद्यपि किले के भीतर बहुत थोड़ी सी सेना थी पर इस वीर सिंहसुवन ने बड़ी वीरता से किले की रक्षा की और तब तक सरदार हरिसिंह नलूवा भी अपनी बीमारी का कुछ ख्याल न कर पेशावर की कुल सेना के साथ अफगानों के सिर पर आ टूटा। इधर से किले की तोपें आग उगल रही थीं। दो तरफा आक्रांत होकर अफगान लोग भुट्टे से भूँजे गए और

जिसने जिधर मार्ग पाया जान लेकर भागने लगा। सरदार हरि-सिंह अपने बहादुर सिक्खों के साथ अलीमसजिद तक पठानों का पीछा करता हुआ चला गया। यहाँ आकर पठान लोग पुन. एक बार मुड़ कर खड़े हुए पर सिक्खों के प्रबल आक्रमण ने उन्हें यहाँ भी टिकने नहीं दिया -और अपनी तोपें, रसद, खेमा सब कुछ छोड़ कर अब की बार ये लोग जान लेकर ऐसे भागे कि फिर पीछे मुड कर देखने का उन्होंने साहस न किया। सिक्ख लोग जी खोल कर अफगानों का सामान लूटने लगे। जब कि चारों ओर लूट पाट मच रही थी, सध्या का समय था, सरदार हरिसिंह अलग खड़ा हुआ था। इसी बीच में किसी पठान ने पीछे से आकर सरदार साहब को गोली मार दी जो उसका कपाल छेदन करती हुई दूसरी ओर निकल गई और वीरवर सरदार हरिसिंह मृत होकर भूमि पर गिर पड़ा। कुछ खास सेवकों ने इसे गिरते देखते ही उठा कर फौरन घोड़े पर सवार कराया और काठी के साथ इसके शरीर को बाध कर पीछे जमरूद के किले की ओर ले गए। अधकार का समय था और सेना सब लूट में व्यस्त थी, इस कारण इस घटना पर सबकी निगाह नहीं गई और सरदार के मृतदेह को लेकर ये लोग सकुशल जमरूद के किले में पहुँच गए। अपने पिता को मरा देख कर उसका पुत्र पहले तो बहुत घबडाया, पर इस मौके पर उसने बड़ी बुद्धिमानी की। एक गुप्तचर के हाथ उसने सारा समाचार तुरत ही महाराज के पास लाहौर भेज दिया और पिता की मृत्यु का हाल छिपा रक्खा, केवल इतना ही प्रगट किया कि घायल हो गए हैं। क्यों कि हरिसिंह बड़ा

नामी सरदार था और कई अवसर पर बड़ी बड़ी कट्टर अफगानी सेना को इसने नाकों चने चबवाए थे, जिससे इसके अधीनस्थ सिपाही सब इसे अजेय समझते थे, सो इस प्रकार से इस नामी सरदार के मारे जाने का समाचार सुन कर सहसा सिपाहियों के जी टूट जाने का भय था और जब कि ये लोग शत्रुओं के देश में थे, ऐसे अवसर पर जब तक लाहौर से और सेना न आ जाय, सरदार की मृत्यु का छिपा रखना अवश्य बुद्धिमानी थी। महाराज ने सवाद पाते ही एक प्रबल सेना के साथ अपने प्रधान अमात्य राजा ध्यानसिंह को पेशावर की ओर रवाना कर दिया। राजा ध्यानसिंह ने पेशावर पहुँच कर पहले वहाँ की रक्षा का पूरा प्रबध किया और फिर वे जमरूद के किले की ओर रवाना हुए। यहाँ आने पर उन से सरदार हरिसिंह की मृत्यु का भेद प्रगट किया गया और महाराज के आज्ञानुसार बड़ी प्रतिष्ठा के साथ इस नामी सरदार की अत्येष्टि क्रिया की गई। यह बडा शूर वीर और निर्भीक था तथा पठानो को बिलकुल कायर डरपोक समझता था। सरहद्दी अफगानों में तो इसके नाम का यहा तक आतक छाया हुआ था कि जब किसी अफगानी बालक को डरा कर चुप कराने की जरूरत होती तो वे लोग 'हरिया' ऐसा कह कर उसे चुप कराते थे। 'हरिया' के शब्द से पठानो के भडके हुए घोडे भी सीधे हो जाते थे। ऐसा प्रताप इसके नाम का था। अफगानों का तो यह यमराज था। जहाँ इनसे सामना होता इनको छटी का दूध याद आजाता था, सो ऐसे वीरवर सरदार के मारे जाने से महाराज को बहुत दु ख हुआ और

जहाँ तक मृत देह की प्रतिष्ठा हो सकती थी वहा तक सभी प्रकार से प्रतिष्ठा करके जब उसका अंतिम सस्कार हो चुका तो महाराज ने उसके लडके को उसके स्थान पर नियत करके उसके पिता की जागीरे इत्यादि सब पूर्ववत् बहाल रक्खीं। इधर जब पठानो ने हरिसिह की मृत्यु का समाचार सुना तो फिर से एक बार बडे जोर शोर से वे सिक्खों पर चढ आए, पर इस बार भी खालसा की तलवारो ने उन्हे पहाडो में मार भगाया। जब सब तरह से शाति स्थापित हो गई तो राजा गुलाबसिह तथा और एक युरोपियन अफसर के अधीन पेशावर की रक्षा का इतजाम सिपुर्द कर सिक्ख सेना लाहौर वापस गई। इन्हीं दिनो महाराज नैपाल का दूत, भेट लेकर महाराज लाहौर की सेवा में आया। महाराज ने उसकी भेट को सहर्ष स्वीकार किया और बदले मे महाराज नैपाल के लिये कई अच्छे अच्छे तोहफे देकर आदरपूर्वक उसे विदा किया। उधर जब पठान लोग पेशावर की ओर से निराश हुए तो व अपने दल बल के साथ मुलतान पर चढ़ गए, पर वहाँ के कर्मचारी दीवान सावनमल्ल ने ऐसी वीरता दिखाई कि अफगानो को यहा से भी निराश होकर मुँह फेरना पडा। जब महाराज ने दीवान सावनमल्ल की इस कारगुजारी का समाचार सुना तो वे बहुत खुश हुए और उन्होंने उसे मुलतान का सूबेदार बना दिया। इस पद पर आरूढ़ होकर दीवान सावनमल्ल ने अच्छी योग्यता दिखलाई और मुलतान की रक्षा का ऐसा पक्का इतजाम किया कि फिर किसी शत्रु की उधर आँख उठाने की हिम्मत न हुई। प्रजा-पालन में भी यह ऐसा दृढ था

कि मुलतान की प्रजा अब तक दीवान सावनमल्ल को स्मरण करके उसकी सराहना करती है। महाराज को भी भाग्यो ही से ऐसे ऐसे कर्म्मचारी प्राप्त हो गए थे। क्यो न हो। इन दिनो सतलज से लेकर काबुल तक के लोग महाराज के प्रताप से थरथर काँपते थे। प्रबल उपद्रवी पठानों को भी इन्होने ऐसा शासित किया कि वे भी जहाँ के तहाँ कदराओं मे जा छिपे। काबुल की प्रबल अफगानी सेना ने भी कई बार इन की तलवार के आगे सिर झुकाया और सारा पजाब "रणजीत" के नाम से गूँज गया। जिधर देखो रणजीत ही के शौर्य्य वीर्य्य ओर प्रताप की चर्चा थी। अन्य भारतीय नरेश महाराज के पास भेंट इत्यादि भेज कर मित्रता जतलाने मे अपना सौभाग्य समझते थे, यहा तक कि रूस, फ्रेंच और सब से निकट प्रतिवासी वृटिश गवर्नमेंट भी इन्हे अपनी बराबरी का मित्र मान कर 'पजाब केशरी' (Lion of Punjab) के नाम से पुकारती थी। इनमे से अगरेजों के साथ निकटस्थ पड़ोसी होने के कारण महाराज का बहुत घनिष्ट सबध था और उनके प्रति जो कुछ जिस प्रकार का उनका व्यवहार आदि से अत तक रहा उसका वर्णन आगे के एक स्वतत्र अध्याय मे किया जायगा।

समय में विलायतवालों के बरजते रहने पर भी अपने स्वत्व की रक्षा के अर्थ अँगरेजों को भारत के तत्कालीन राजनैतिक मामलों में हाथ डालना ही पड़ा और जब क्रमश सफलता प्राप्त होने लगी तो इनका दिल भी बढ गया और धीरे धीरे जापान की तरह पचास वर्ष के भीतर ही इनका बल दिन दूना रात चौगुना बढने लगा। इन दिनों बगाल प्रात में तो अँगरेजों की तूती बोलती ही थी, इसके सिवाय अवध और युक्तप्रात भी इनके अधिकार में आ गया और पश्चिम की प्राचीन राजधानी दिल्ली पर भी इनकी तलवार की छाया जा पडी। सन् १८०३ ई० के सितबर मास की तीसरी तारीख को मरहठों को परास्त कर जनरल लेक दिल्ली में प्रविष्ट हुए और थोडे ही दिनों बाद सेंधिया की अधीनता मे मरहठे लोग पुन अँगरेजों द्वारा हराए गए और आगरा, सिरसा, हिसार, रोहतक, दिल्ली, गुरगाँव सदा के लिये अँगरेजी राज्य मे सम्मिलित किए गए। अँगरेजों का राज्य इन दिनों बिजली की तरह एक प्रात से दूसरे प्रात में फैल रहा था। विजयलक्ष्मी इनके आगे हाथ बाँधे खडी थी। सब ओर हार खाकर मरहठों ने सिक्खों की नवीन उठती हुई शक्ति से मिल कर अपनी गई हुई शक्ति के पुनरुद्धार की चेष्टा भी की। पर "जहाँ जाय भूखा वहीं पड़े सूखा," बिचारा का यह अतिम उद्यम भी विफल हुआ। सन् १८०४ ई० के अक्टूबर मास मे यशवतराव होलकर ने एक बार अँगरेजों को हरा कर दिल्ली का अवरोध किया था, पर दो महीने बाद पुन उसे हार कर पटियाले भाग जाना पड़ा, और वहाँ भी अँगरेजों ने उसे चैन न लेने दिया इसपर वह भाग कर रणजीत सिंह की रियासत

अमृतसर मे आया और यहीं से रणजीत सिंह और अँगरेजों का संबंध आरंभ होता है। जिन दिनों होलकर भागकर इनकी रियासत अमृतसर में आया उन दिनों महाराज कसूर की लड़ाई पर गए हुए थे और वहीं उनको होलकर के पंजाब मे आने की खबर लगी। होलकर के संग करीब दस पंद्रह हजार मरहठे सवार भी थे, सो इस संवाद के पाते ही महाराज फौरन् युद्धभूमि से लाहौर वापस आए। यहाँ आने पर यशवंतराव होलकर का वकील नजर लेकर महाराज की सेवा मे उपस्थित हुआ और मरहठों को अपनी शरण में लेकर अँगरेजों के विरुद्ध उनकी सहायता करने के लिये उसने विनती की। महाराज ने होलकर के वकील की बात बहुत ध्यान से सुनी और एकाएक इसका कुछ उत्तर न देकर अमृतसर आ कर उपयुक्त सलाह मशविरे के बाद कुछ उत्तर देने को कहा, क्योंकि लार्ड लेक की अधीनता में अँगरेजी सेना होलकर का पीछा करती हुई सतलज तक आ गई थी, ऐसे अवसर पर एकाएक रणजीतसिंह अपनी कुल सेना को युद्धार्थ सन्नद्ध कर भी नहीं सकते थे, इसलिये कुछ गुप्तचरों को अँगरेजी सेना की चालढाल जाँचने के लिये महाराज ने रवाना किया और अपने प्रतापी सरदार फतहसिंह को साथ लेकर वे अमृतसर पहुँचे। सर्दार फतहसिंह ने भी महाराज की सम्मति को पसंद किया तथा जब गुप्तचरों ने आकर यह संवाद दिया कि अँगरेजी सेना के पंजाब मे आने से प्रजा पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा है, तब तो महाराज अपनी पूर्व सम्मति पर और भी दृढ़ हुए और सहसा अँगरेजों से छेड

छाप करना उन्होंने उचित नहीं समझा। चरा ने आकर यह भी कहा कि अँगरेजी सिपाहियों के गोरे चेहरे, चुस्त पोशाक और नियमित कवायद और 'मार्च' को देख कर पजाबी प्रजा दंग है और सब से बढ़ कर इनके शिष्ट व्यवहार और भद्रता पर तो प्रजा लट्टू हो रही है। अपनी सिक्खों की सेना जिस ग्राम से होकर जाती है खेत के खेत उजाड़ कर डालती है, मजूरों को बेगार में पकड़ कर काम लिया जाता है, बनियों की दूकानें लूट कर रसद का काम चलाया जाता है पर अँगरेजी सेना जिस ग्राम से होकर गई है, किसीकी एक पत्ती में भी उसने हाथ नहीं लगाया गया है। जिससे जो चीजें ली गई हैं सबका उपयुक्त मूल्य दिया गया है। एक पक्षी को भी अकारण नहीं सताया गया है। प्रजा सब यही मनाती है कि 'भगवान् इन्हींको हमारा राजा करे," अस्तु दूत के मुख से यह सब समाचार सुनकर महाराज सब सरदारों के साथ सलाह करने लगे और इसी बीच में लाड लेक का भेजा हुआ झींध का राजा भागसिंह भी महाराज के पास यह सँदेसा लेकर आया कि "महाराज लाहोर होलकर की सहायता करके अँगरेजों को अपना वैरी न बनावें।" उधर होलकर ने भी अपने भरसक जो कुछ कहना था, सभी कुछ महाराज से कहा सुनाया। इस अवस्था में अपने सरदारों के साथ बहुत कुछ सोच विचार कर महाराज ने यही निश्चय किया कि "अँगरेजों से वैर न ठाना जाय और बीच मे पड़ कर अँगरेजो से होलकर की संधि करवा दी जाय।" महाराज का इस अवसर पर यह सोचना बहुत उपयुक्त था। अस्तु, महाराज

ने बीच मे पड़ कर लार्ड लेक से सिफारिस कर यशवतराव होलकर से अँगरेजो की सधि करवा दी और होल्कर का बहुत सा इलाका जो अँगरेजो के अधिकार मे आ गया था उसे वापस मिल गया। दोनो पक्षवाले प्रसन्न हुए । परस्पर सख्यभाव रखने के लिये महाराज की भी अँगरेजों से एक सधि हुई जिसमें महाराज ने प्रतिज्ञा की कि "वे होलकर की सहायता नहीं करेगे और शीघ्र ही उसे अपनी रियासत से विदा कर देंगे ।" इसके बाद ब्रिटिश गवर्नमेंट की ओर से महाराज की सेवा मे एक दूत बहुत सी भेंट और तोहफा लेकर आया। महाराज ने उस दूत की बड़ी प्रतिष्ठा और खातिरदारी की और अपनी ओर से पाँच हजार रुपए की उसे एक खिलत प्रदान की तथा मित्रता का वचन देकर प्रतिष्ठा के साथ उसे विदा किया। इधर महाराज बडी तेजी से अपना राज्य बढ़ा रहे थे और पजाब की छोटी मोटी सब रियासतो पर रात दिन यही आतक छाया रहता था कि देखें महाराज लाहौर की तलवार कब किसके सिर पर आ चमकती है। क्योकि इन दिनों नित्य दो एक रियासते महाराज के राज्यभुक्त हो रही थीं। अस्तु, महाराज का यह चढ़ता प्रताप देखकर सतलज की तीरवर्ती रियासतो को स्वाभीवक ही बडा भय उत्पन्न हुआ। वे लोग रात दिन अपने नाश का स्वप्न देखने लगे और परस्पर मिलकर अपनी रक्षा का उपाय सोचने लगे। इनमें से पटियाले का राजा मुख्य था। अस्तु, इन लोगों की यही राय ठहरी कि जब रणजीत का राज्य हैजे की तरह फैलकर सब छोटी छोटी रियासतो का

प्रास कर रहा है तो इस अवस्था मे अँगरेजों ही के अधीन जाने मे कल्याण है। यह सोच कर इन लोगों ने अपने हस्ताक्षर से एक आवेदनपत्र दिल्ली के अँगरेजी रेजीडेंट की सेवा म इस आशय का भेजा कि इन दिनों रणजीतसिह का राज्य बड़ी तेजी से फैल रहा है और हम में इसके विरुद्ध अस्त्र उठाने की सामर्थ्य नहीं है। इसलिये हम सब लोग अपने को अँगरेजी सरकार के अधीन किया चाहते हैं और आशा करते हैं कि सरकार हमारी प्रार्थना को पूरा करेगी। इस आशय के आवेदन पत्र को लेकर ये लोग दिल्ली गए और वहाँ के अँगरेजी रेजीडेंट मिस्टर सीटन से इन्होंने भेंट की। मिस्टर सीटन इन सरदारों से बड़ी प्रतिष्ठा के साथ मिले और उन्होंने इन लोगों की बहुत खातिर की। ये सारे सरदार फुलकियाँ मिसलवाले थे जिनकी रियासतें सतलज के इस पार थीं। सीटन साहब ने इनका आवेदनपत्र ग्रहण कर विचार के उपरात उत्तर देने को कहा क्योंकि वे सहसा कोई राजनैतिक चाल महाराज लाहौर के विरुद्ध नहीं चल सकते थे। सो इसने उक्त आवेदनपत्र तात्कलीन गवर्नर-जनरल लार्ड मिंटो के पास भेज दिया। इस समय युरोप में प्रसिद्ध नेपोलियन बोनापार्ट का भाग्यसूर्य्य प्रचड रूप से देदीप्यमान था, पर अँगरेजो के आगे उसकी कुछ नहीं चलती थी। सारे युरोप को उसने पैर तले रौंद डाला था, पर इन तीन टापुओं के निवासी उसे बर्रे के काटने की पीडा पहुँचा रहे थे, इसलिये जब वह युरोप में इन लोगो पर कुछ प्रभाव न डाल पाया तो मिसर की राह से उसने भारत मे आने की चेष्टा की। पर

जब यह चेष्टा भी व्यर्थ हुई तो रशिया से संधि करके रूस और फारस की राह से अफगानिस्तान होते हुए उसने भारत में आना चाहा। बृटिश गवर्नमेंट इसके लिये पहले से सचेत थी और इसके रोकने का पक्का इतजाम करने के लिये फारस की राजधानी तेहरान में अँगरेजों की ओर से सर जान मालकम साहब दूत स्वरूप भेजे गए थे तथा भारतीय सीमा के इतजाम के लिये मिस्टर एलफिस्टन और सर चार्लस मेटकाफ पंजाब में महाराज रणजीत सिंह के पास भेजे गए थे।

इनमें से मेटकाफ साहब लुधियाने से रवाना होकर तारीख २२ अगस्त सन् १८०८ ई० को पहले पटियाल पहुँचे। वहाँ के राजा साहबसिंह ने बड़ी प्रतिष्ठा के साथ इनका स्वागत किया और फुलकिया मिसलवालों का आवेदनपत्र उपस्थित कर अपने को तत्काल ही बृटिश गवर्नमेंट के हाथों में अर्पण करना चाहा, यहाँ तक कि पटियाला नरेश ने अपने किले और खजाने की कुंजियाँ साहब के सामने फेक दी और कहा "अब आप ही इन सबों के मालिक हैं, जो चाहे कीजिए।" मेटकाफ साहब ने बडे आदर से राजा साहब को कुंजियाँ वापस देते हुए कहा कि "आप कुछ चिंता न करें, बृटिश गवर्नमेंट बहुत शीघ्र ही आप लोगों के मामले का निपटेरा करनेवाली है, धीरज रखिए, जरूरत पड़ने पर अँगरेजी तलवार हरदम आपकी सहायता के लिये तैयार रहेगी। मैं इन्हीं सब बातों को तय करने के लिये महाराज लाहौर के पास जा रहा हूँ।" अस्तु। अभी मेटकाफ साहब लाहौर पहुँचे नहीं थे कि रणजीतसिंह को जब इन बातों की खबर लगी तो वे जानबूझ कर

कसूर चल दिए, क्योंकि वे सारे पंजाब, को दिल्ली तक अपने अधीन किया चाहते थे और इसमें अँगरेजों की दखलदाजी उन्हें पसंद न थी। जब मेटकाफ साहब का दूत मिलने की दरख्वास्त करने के लिये महाराज के पास पहुँचा तो इन्होंने कह दिया कि "इस समय मैं राज्य के दौरे पर जा रहा हूँ, लौट कर भेंट करूँगा।" पर चूँकि ब्रिटिश गवर्नमेंट की ओर से साहब को बहुत सख्त ताकीद थी कि रणजीतसिंह से मिलकर फौरन पंजाब का मामला तै करो, इसलिये साहब को विवश हो कसूर जाना पड़ा। मेटकाफ साहब के वहाँ पहुँचने पर महाराज की आज्ञा से सरदार फतहसिंह अहलूवालिया और दीवान मोकमचंद दो हजार सिक्ख सवारों के साथ इनकी अगवानी को आए और बड़े सत्कार से महाराज के पास इनको ले गए। वहाँ पहुँचने पर ब्रिटिश दूत ने अभिवादन कर महाराज के आगे ब्रिटिश गवर्नमेंट की ओर से भेंट उपस्थित की। इस भेंट में एक बहुत उम्दा विलायती बग्घी थी और मय हौदे और झूलों से सजे सजाए तीन हाथी और कई तरह के विलायती और देशी बहुमूल्य वस्त्र थे। महाराज ने मित्रता के चिन्ह स्वरूप इस भेंट को सहर्ष स्वीकार किया और धन्यवाद देकर मेटकाफ साहब से कहा कि "अँगरेजी गवर्नमेंट और मेरे बीच जो मित्रता की प्रतिज्ञा हो चुकी है, उसे कायम रखने के लिये मैं सदा तत्पर हूँ और नेपोलियन यदि पंजाब में आया तो उसे कदापि घुसने नहीं दूँगा। उससे आप निर्भय रहें।" इन सब बातों के हो जाने पर मेटकाफ साहब ने खेमा में विश्राम किया, और संध्या को पुनः निराले में महाराज से

भेंट की तथा असली काम की बात छेड़ी जिसका मुख्य तात्पर्य यह था कि "सतलज के इस पार के इलाकों पर महाराज लाहौर अँगरेजों की अमलदारी स्वीकार करें और फुलकियाँ सरदारों से छेड़छाड़ न करें।" महाराज को, जो कि जमना को अपने राज्य की सीमा बनाना चाहते थे, यह बात कब स्वीकार हो सकती थी, इसलिये जब जब सतलज नदी को सीमा बनाने की बात आती तो वे उसे आनाकानी कर के टाल देते थे और दूसरा ही जिकर छेड़ देते थे। इधर तो महाराज ने मेटकाफ साहब को यों बातों में बझाए रक्खा और उधर अपने खास दीवान (Private Secretary) फकीर अजीजुद्दीन को सतलज के आसपास की रियासतों पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी और आप फिरोजपुर की ओर रवाना हुए। फिरोजपुर से नजराना वसूल कर महाराज ने एक सरदार को फरीदकोट पर भेजा और उस रियासत को दखल कर मलेरकोटला की ओर तलवार घुमाई। यहाँ के राजा ने बड़ी कठिनाई से बटोर बटोर कर एक लाख रुपया जुर्माने का दिया। मेटकाफ साहब ने घट्टी के मुकाम पर पुन महाराज से निराले में एक बार भेंट की, पर कुछ तय न हुआ। साहब विवश थे। जहाँ जहाँ महाराज जाते साथ साथ साहब को भी पीछे पीछे जाना पड़ता था और एक ओर तो रणजीतसिंह "आज करते है, कल करते हैं", ऐसे बतोले में उसे रखते और दूसरी ओर सतलज पार की रियासतों को एक के बाद एक हड़प करते जाते थे। मेटकाफ को महाराज की यह चाल बहुत बुरी लगी और उसने कहला भेजा कि "जिन रियासतों के बारे में मेरे आपके

बीच बातचीत हो रही है उन्ह यो मेरे सामने ही दखल करते जाना आपको सर्वथा अनुचित है।" महाराज ने उत्तर दिया कि "मैं इस दौरे से वापस आ कर सब बाते तय करूँगा।" विवश हो मेटकाफ साहब को सतलज के किनारे फतहाबाद मे ठहर जाना पड़ा और महाराज मारोमार पटियाले जा पहुँचे। वहाँ पहुँच कर तत्काल ही उन्होंने पटियाले की रियासत दखल करली और अपने एक सरदार गगासिंह साहनी को पाँच हजार सवारो के साथ पटियाले में तैनात कर दिया। इस रियासत में से दीवान हुकुमचद को महाराज ने कई इलाके, और पाँच हजार के करीब की जागीर दीवान मोकमचद को दे दी, तथा पटियाले का बाकी इलाका राजा नाभा के अधीन कर दिया। इन्हींके आस पास के इलाके रहीमाबाद, माछीवाडा, काहना, तरोस्ट, छालदवी इत्यादि अधिकृत कर उन्होंने अपने सरदार फतहसिंह अहलूवालिया और कर्म्मसिंह नागन्ना को दे दिए लखनौर के मुकाम पर पटियाला नरेश को बुलवा कर महाराज ने उनसे भेंट की और अपने साथ मित्रता रखने के लिये बहुत कुछ समझाया बुझाया। यद्यपि पटियाला नरेश ने साहब सिंह के दबाव मे आकर इस अवसर पर महाराज को मित्रता का वचन दिया, मित्रतासूचक पगडी बदलौवल भी हुई और एक सधि पत्र भी लिखा गया पर दोनों मे से किसी का दिल साफ न था। अस्तु जब यहाँ से होकर महाराज अमृतसर पहुँचे तो मेटकाफ साहब ने पुन पहले का प्रस्ताव उपस्थित किया कि "सतलज के वाम भाग का सब इलाका सदा से दिल्ली के

अधीन रहा है, इसलिये इस पर बृटिश गवर्नमेंट अपना दखल रक्खेगी और इस बात को आप एक बार लार्ड लेक के सामने स्वीकार भी कर चुके हैं, अब इसके विपरीत करने से मित्रता क्योंकर कायम रह सकती है ?" महाराज ने साहब की इस बात का कोई उत्तर न दिया, वे जमुना को अपने राज्य की सीमा स्थिर करने की सोचे हुए थे, इस लिये उन्होंने अपने सरदारोंको युद्ध की तैयारी का आदेश दे दिया। बात की बात में महाराज की सारी सेना अमृतसर में इकट्ठी होगई। अमृतसर के सुदृढ किले गोविंदगढ़ में रसद पानी गोला गोली बारूद सब ही कुछ जमा होने लगा और किले की दीवार और बुर्जों पर मौके मौके से तोपें चढवा दी गईं। रात दिन सिक्ख सेना की कवायद होने लगी और महाराज एक प्रबल शत्रु से मुकाबला करने के लिये तैयार होगए। उधर जब लार्ड मिंटो को यह खबर पहुँची कि महाराज लाहौर अँगरेजों से युद्ध की तैयारी कर रहे हैं तब तो उन्होंने भी फौरन कर्नल आक्टरलोनी के अधीन एक प्रबल अँगरेजी सेना देकर उन्हें लाहौर की ओर रवाना कर दिया और यह कह दिया कि जहाँ तक हो सके बहुत शीघ्र सतलज के इस पार की रियासतों को जिन्हें रणजीत सिंह ने दखल कर लिया है, उससे स्वतत्र करो और जिसमें विवश हो रणजीत सतलज ही को अपने राज्य की सीमा स्थिर करे इसका इतजाम करो।" अस्तु कर्नल आक्टरलोनी अपनी सेना के साथ पहले अबाले पहुँचे और रानी दयाकुँवर को वहाँ का दखल दिलाकर, पटियाला, नाभा और चबा होते हुए और वहाँ के राजाओंको उनकी रियासतों

पर प्रतिष्ठित करते हुए चार्लेस मेटकाफ की सेना के साथ योग देने के लिये लुधियाने पहुँचे । यहाँ मेटकाफ साहब की सेना भी इस नवीन सेना से युक्त हुई और चार्लेस मेटकाफ साहब के अंतिम संदेश के आसरे कर्नल साहब वहीं लुधियाने में ठहरे रहे । जब रणजीतसिंह ने अँगरेजों की इस नवीन सेना के आगमन का समाचार सुना तो पहले तो वे कुछ चिंतित हुए पर मेटकाफ की बातों का कुछ ध्यान न कर उन्होंने युद्ध की तैयारी जारी रक्खी। इसी बीच में एक घटना ऐसी हो गई जिससे रणजीतसिंह को अपनी राय बदलनी पड़ी। बात यह थी कि इन दिनों मेटकाफ साहब अमृतसर ही में ठहरे हुए थे और सतलज को सीमा कायम करने के लिये रणजीतसिंह को बार बार समझा रहे थे, पर रणजीतसिंह उनकी बातों का कुछ स्पष्ट उत्तर न देकर लड़ाई की तैयारी करते जाते थे। इसी समय में मुसलमानों का मुहर्रम का त्योहार आ पड़ा। मेटकाफ साहब की शरीर रक्षक सेना में कुछ शिया मुसल्मान भी थे, और हिंदू भी थे, सो इन लोगों ने अपनी सनातन प्रथा के अनुसार एक ताजिया बनाया और बड़ी सजावट और धूम धाम के साथ 'हसन हुसेन' के स्वर से छाती पीटते और रोते हुए, सवारी निकाली। जब यह सवारी सिक्खों के मुख्य धर्म्मस्थान श्रीहरिमंदिर जी के सामने से होती हुई गई तो कई धर्मांध अकालिए सिक्खों से अपनी राजधानी में मुसलमानों का यह आचरण बरदाश्त नहीं हुआ और उन लोगों ने चढ़ाई करके ताजियों को तोड मरोड कर फेंक दिया और जिसने चूँ चकार किया, उसका सिर तल्वार से काट

कर फेंक दिया । अब तो मेटकाफ साहब के साथ की सारी सेना बिगड़ गई और सिक्खों पर गोली चलाने लगी।
इधर से भी सिक्ख सिपाहियों ने अपनी बंदूकें सँभालीं और दोतरफा दनादन गोलियाँ चलने लगीं। एक तरफ उजड्ड अकालिए सिक्ख और दूसरी ओर सुशिक्षित अँगरेजी सेना। अस्तु। यद्यपि अकालिए अँगरेजी सिपाहियों से गिनती में दुगुने थे, पर जब अँगरेजी सेना ने नियमपूर्वक व्यूहबद्ध होकर अकालियों पर आक्रमण किया तो ये लोग धड़ाधड़ भूमिशायी होने लगे। यद्यपि अकालियों में से कोई भी रणभूमि में भागा नहीं, पर जीत अँगरेजी सिपाहियों ही की हुई और सारे अकालिए सिक्ख सिपाही मारे गए। जब रणजीत सिंह ने गोविंदगढ किले से यह सब दृश्य अपनी आँखों से देखा तो फौरन सवार होकर मौके पर पहुँचे और हाथ उठाकर उन्होंने लड़ाई बंद करवाई और तत्कालही वे मेटकाफ साहब के खेमे में गए। इस उत्पात के कारण जो कि सिक्खों द्वारा उठाया गया था वह अँगरेजी दूत बड़े क्रोधमें बैठा हुआ था। रणजीतसिंह ने वहाँ जाकर उसे समझा बुझा कर शांत किया और कहा कि "मजहबी जोश इन अकालियों में हद से ज्यादः है, यही सबब इस उत्पात का हुआ और मुझे पता लगते ही मैंने लड़ाई बंद करवा दी है। आप इस गलती को क्षमा करें।" इस प्रकार से समझा बुझा कर रणजीतसिंह ने अँगरेजी सिपाहियों को हर्जाने का कुछ द्रव्य दिया और कई अकालियों को जिन्होंने उभाड़ा था, बेड़ी डाल कर बंदीगृह में डाल दिया। यह सब कार्य कर उन्होंने अपने सरदारों के साथ एक गुप्त मंत्रणा सभा की

और यह निश्चय किया कि दो कारणों से इस समय अँगरेजों से वैर ठानना उचित नहीं है।

एक तो अँगरेजों के आते ही प्रजाओं पर इनकी सेना के शिष्ट व्यवहार का बड़ा प्रभाव पड़ा है जिस कारण सतलज पार की सारी रियासतें इनसे मिल गई हैं और आश्चर्य नहीं कि इधर के सब इलाकेदार भी इनसे मिल जाँय तो मुझे फिर बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। दूसरे हमारे सिपाही अँगरेजी ढग की कवायद नहीं जानते। यह भी बड़ी भारी कमी है, जिसका परिणाम अभी आँखों ही से देख चुके हैं, फिर अभी काश्मीर से काबुल तक का प्रदेश भी तो विजय करने के लिये बाकी है, इसलिये इस समय मेटकाफ साहब की बात मान लेना ही उचित है। यही सलाह पक्की हुई और महाराज ने अब की बार अँगरेजी दूत से मिलकर कह दिया कि "मुझे आपकी बात स्वीकार है। सधिपत्र तैयार करवाइए।" सधिपत्र तैयार करवाया गया, जिसके तैयार करने में सर चार्लस मेटकाफ और कर्नल आक्टरलोनी ने बड़ी योग्यता और मुस्तैदी दिखलाई क्योंकि यदि कर्नल साहब अपने दलबल के साथ इतनी जल्दी लुधियाने न पहुँच गए होते तो तुरत ही महाराज सतलज के पार अपना चौथा दौरा आरभ कर देते और अब की बार दिल्ली तक की खबर ले डालते। कर्नल साहब की मुस्तैदी से बड़ा काम हुआ और रणजीतसिंह को विवश हो अँगरेजों की बात माननी पड़ी तथा तदनुसार सधिपत्र पर हस्ताक्षर हो गया। सधिपत्र का मुख्य तात्पर्य यह था कि महाराज लाहौर और अँगरेजी राज्य

के बीच सतलज नदी ही सीमा मानी जाय, दोनों एक दूसरे के इलाकों में हस्तक्षेप न करें और बराबरी की मित्रता कायम रक्खें। इसकी पूरी नकल मूल अँगरेजी और हिंदी में नीचे दी जाती है।

Treaty between the British Government and Maharaja Ranjit Sing of Lahore.

1 Whereas certain differences which had arisen within the British Government and the Raja of Lahore have been happily and amicably adjusted and both parties being anxious to maintain the relations of perfect amity and concord the following articles of treaty which shall be binding on the heirs and successors of the two parties have been concluded by Maharaja Ranjitsing on his own part and by the agency of Charles Theopus Metcalfe Esq, on the part of the British Government

ARTICLE I Perpetual friendship shall subsist between the British Government and the state of Lahore The latter shall be considered with respect to the former to be on the footing of most favoured powers and the British Government shall have no concern with the territories and subjects of the Raja to the northward of river Sutlej

ARTICLE II The Raja will never maintain in the territory occupied by him and his dependencies on the left bank of river Sutlej more troops than are necessary for the internal duties of the territory, nor commit or suffer any encroachment on the possessions and rights of the chiefs in its vicinity

ARTICLE III In the event of a violation of any of the preceeding articles or of a departure from the rules of friendship on the part of either state this treaty shall be considered null and viod

ARTICLE IV Relates to the ratification of the treaty by His Excellency the Governor General in Council

Seal and Signature of	Seal and Signature of
C T METCAFE	MAHARAJA RANJITSING

Company s Seal

(Signed) MINTO

Ratified by the Governor General in Council on the 13th May 1809 A D

बृटिश गवर्नमेंट और लाहौर के महाराज रणजीतसिंह की संधि का मर्मानुवाद ।

१—बृटिश गवर्नमेंट और लाहौर के राजा के बीच जो कुछ वैमनस्य उपस्थित हो गया था वह सानंद शांतिपूर्वक निपट गया और दोनों की इच्छा मित्रता का संबंध स्थिर रखने की है, इसलिये संधिपत्र की नीचे लिखी शर्तें जिनका मानना दोनों के वारिस और संतानों का कर्तव्य होगा, दोनों के बीच महाराज रणजीतसिंह द्वारा स्वयम् और चार्लस थीयोफस मेटकाफ द्वारा बृटिश गवर्नमेंट की ओर से तय पाई हैं ।

पहली शर्त—बृटिश गवर्नमेंट और लाहौर की रियासत में परस्पर सदा के लिये मित्रता रहेगी । बृटिश गवर्नमेंट लाहौर राज्य को अपना सब से अधिक कृपापात्र समझेगी और सतलज के उत्तर तरफ के राजा के प्रदेशों या प्रजाओं से कोई संबंध न रक्खेगी ।

दूसरी शर्त—सतलज नदी के बाएँ किनारे पर राजा या उनके अधीनस्थ सरदारों के जो इलाके हैं, उनमें भीतरी इंतजाम के लिये जितनी जरूरी है, उससे अधिक सेना वह नहीं रक्खेंगे, और इसके आसपास के राजाओं के इलाके और अधिकार पर किसी प्रकार की छेड़छाड़ न करेंगे और न किसीको करने देंगे ।

तीसरी शर्त—यदि ऊपर लिखी शर्तों को दोनों में से कोई

भी तोड़ेगा या मित्रता के नियम को भग करेगा तो यह सधिपत्र नाजायज समझा जायगा।

चौथी शर्त—इसमें बड़े लाटसाहब द्वारा इस सधि की मजूरी का जिक्र है।

मेटकाफ साहब के हस्ताक्षर और मोहर	महाराज रणजीतसिंह के हस्ताक्षर और मोहर

कम्पनी की मुहर

दस्तखत 'मिंटो'

गवर्नर जनरल द्वारा ता० १३ मई सन् १८०९ ई० को मजूर की गई।

जब सब बातें तय होकर सधिपत्र पर महाराज के हस्ताक्षर हो गए तो मेटकाफ साहब अमृतसर से वापस आ गए। महाराज ने अपनी मृत्यु तक अँगरेजो से बराबर इसी प्रतिज्ञा के अनुसार मित्रता कायम रक्खी। यद्यपि इस सधि के हो जाने पर भी सेंधिया, होलकर और अमीर खाँ रोहिला के दूत और प्रतिनिधि बराबर महाराज के पास आते जाते रहे और उन्हें अँगरेजो के विरुद्ध अपनी सहायता के लिये अस्त्र उठाने के लिये बहुत कुछ समझाते बुझाते और पट्टी पढाते रहे पर महाराज आजकल की सभ्य शक्तियो की तरह सधिपत्र को 'केवल एक रद्दी कागज' नहीं समझते थे और न नेपोलियन की तरह यह समझते थे कि 'सधि केवल तोड़ने ही के लिये की जाती है' क्योंकि भारतीय दिमाग कभी ऐसी कपट नीति

को सोच ही नहीं सकता। अस्तु उन्होने इन लोगों के दिखाए सब्जबाग की कुछ भी परवाह नहीं की और अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ रहकर आजन्म बृटिश गवर्नमेंट से मित्रता स्थिर रक्खी। यद्यपि कई बार ऐसी अफवाह भी उड़ी कि महाराज लाहौर अँगरेजो के विरुद्ध इन लोगो की सहायता करेंगे पर सब बातें झूठी साबित हुईं। महाराज अपनी प्रतिज्ञा से नहीं डिगे और प्रत्येक अवसर पर इस मित्रता को अपने शिष्ट व्यवहार से बढाते ही रहे। सन १८१७ ई० के फरवरी मास मे जब युवराज खड्गसिंह का विवाह हुआ तो बृटिश दूत को भी नेवता भेजा गया और वह बडे ठाट से बरात मे शामिल हुआ। यह विवाह गुरदासपुर के सरदार जयमलसिंह कन्हैया की लड़की बीबी चदकौर से हुआ था और नेवते मे बहुत से राजे महा-राजे आए थे और लाखों रुपए तबोल मे भी आए थे। यद्यपि महाराज ने शिष्टाचार के कारण सब से पूरा तबोल नहीं लिया, तौ भी तीन लाख रुपए तबोल में आए। इसमें अँगरेजी दूत कर्नल आक्टरलोनी ने भी बृटिश गवर्नमेंट की ओर से पाँच हजार रुपए दिए थे, जो महाराज ने सादर स्वीकार किए। बडे ठाट बाट से बरात निकली और राजसी सामान से विवाह हुआ। विवाह करके जब महाराज लाहौर वापस आए तो निकट ही होली का त्योहार था, इस कारण महाराज ने किसी को विदा नहीं किया, होली का उत्सव मनाने के लिये सब को ठहरा रक्खा। महाराज ने सब के साथ होली खेली और कर्नल आक्टरलोनी को भी इस उत्सव में शामिल किया और उन पर अबीर डाली। कर्नल साहब ने "युरोपियन प्रथा के

सर्वथा प्रतिकूल होने पर भी महाराज की खातरी सहर्ष स्वीकार की और अपनी मित्रता का वचन देकर वे विदा हुए। कुछ दिनों के बाद महाराज ने एक पश्मीने का बहुत उम्द खेमा और काश्मीर की बनी हुई एक कारचोबी की कनात शाहशाह इगलैंड को तोहफे में भेजी। इन तोहफों को पा कर गवर्नर जनरल साहब बहुत खुश हुए और एक धन्यवाद के खरीते के साथ कप्तान वीड के मारफत महाराज को निम्नलिखित तोहफे भेजे—

१—दो घोडी अरबी बहुत उम्द।
२—एक हाथी मय चाँदी के हौदे के।
३—एक रत्नजटित तलवार।
४—एक दोनली बदूक।
५—दो मोतियों के कठे।
६—कीमखाब के कई थान।

महाराज ने बृटिश गवर्नमेंट की यह भेट सादर स्वीकार की और बदले में कप्तान साहब को पाँच सौ अशर्फियाँ, पाँच हजार रुपया नगद और पाँच सौ थाल मेवा और मिष्टान्न, इनाम मे दिया। दूसरे दिन महाराज के दीवान राजा ध्यानसिंह ने कप्तान वीड साहब को अपने साथ लेकर लाहौर के सब दर्शनीय स्थान दिखलाए और खालसा सेना की कवायद भी दिखलाई जिनकी बसती वरदी धूप मे सोने की तरह चमक चमक कर साहब की आँखों में चकाचौंध डाल रही थी। साहब बहुत प्रसन्न हुए और बड़े अदब से अभिवादन कर महाराज से विदा हुए।

महाराज ने शाहशाह इगलैंड को जो दुशाले का खेमा भेजा था उसके वदले सन् १८३० ई० में विलायत से पॉच वहुत उम्द घोड़े और एक धन्यवाद का खरीता आया तथा विलायत के प्रधान मन्त्री सर जान मालकम साहब ने अपनी तरफ से एक विलायती वग्घी भेजी। इन चीजा को लेकर अँगरेजो की ओर से लेफटेंट वृस साहब आए जिनकी महाराज ने बहुत प्रतिष्ठा और खातिर की, खूब सैर सपाटा कराया, नाचरग दिखाया और चलते समय विदाई मे एक हीरे की अँगूठी और एक घोड़ी दी। महाराज के इस शिष्ट और उदार व्यवहार से अँगरेजो पर वड़ा प्रभाव पडा और गवर्नर-जनरल सर विलियम वेंटिक ने स्वय मुलाकात करने की इच्छा प्रगट की। यद्यपि महाराज के सलाहकारों ने महाराज को मना किया कि "आप स्वय जा कर लाट साहब से न मिलें", पर उन्हें वृटिश गौरव और सत्यता का पूरा भरोसा था इसलिये उन्होंने किसी की एक न सुनी और सहर्ष लाट साहब के प्रस्ताव को स्वीकार किया। इस मिलन के लिये रोपड़ का मुकाम नियत हुआ और दोनो तरफ की सेना ने आ कर अपने अपने खेमे गाड़ने आरंभ कर दिए। जब इस स्थान पर वडे ठाटबाट से दोनो तरफ के तबू कनात गड गए और रहन सहन की सब तैयारियाँ हो गई तो ता० १५ अक्टूबर को लार्ड वेंटिक साहब अपने दलबल के साथ शिमले से रवाना हुए और २२ तारीख को तबुओ में रोपड़ जा विराजे। इधर से विजयादशमी का उत्सव मनाने के बाद महाराज ने अपनी सोलह सहस्र खालसा सेना के साथ बड़े

ठाटबाट से आ कर अपने तबुओं मे डेरा डाला। महाराज के पहुँचने पर लाट साहब का चीफ सेक्रेटरी कुशल प्रश्न पूछने के लिये आया, जिसका यथोचित सत्कार कर महाराज ने विदा किया तथा अपनी ओर से युवराज खड्गसिंह को कई सरदारों के साथ लाट साहब से कुशल प्रश्न पूछने को भेज दिया। इन लोगों के अँगरेजी खेमों मे पहुँचने पर लाट साहब ने स्वय कुर्सी से उठ कर युवराज से हाथ मिलाया और बडे तपाक से आदर सत्कार के साथ कुर्सी पर ला विठाया। सब के बैठ जाने पर युवराज ने ग्यारह सौ रुपए लाट साहब के सिर पर से वार कर लुटा दिए। उधर से युवराज के सिर पर से भी ग्यारह सौ रुपए वारे गए और बातचीत के बाद महाराज की मुलाकात के लिये २६ अक्टूबर की तिथि निश्चित हुई। जब ये लौटकर अपने खेमे मे आए और महाराज से सब समाचार कहा तो महाराज बडी प्रसन्नता से मिलने की तैयारी करने लगे, पर उनके सरदारों ने उन्हे समझाया कि "आप मिलने न जायँ, अँगरेज लोग आपको कैद कर लेंगे"। पर रणजीतसिंह जो कि परले सिरे के राजनीतिज्ञ और बुद्धिमान मनुष्य थे, इन लोगों की तुच्छ बहकावट मे नहीं आए और उन्होंने मिलने का दृढ सकल्प किया। सरदारों ने यह भी कहा कि आप स्वय न जॉय और कहला भेजे कि "आप अमृतसर आ कर भेंट कीजिए", पर महाराज ने इन मूर्खतापूर्ण बातो पर कुछ ध्यान नहीं दिया क्योंकि उन्हे बृटिश वचन का पूरा भरोसा था, इसलिये पहले तो महाराज ने अपने चार हजार सवारों को आगे भेजा और कई नामी सरदारों के साथ सजे-

सजाए चाँदी सोने के गगाजमनी हौदे पर जिसमें मोतियों की झालरें लटक रही थीं, सवार होकर बड़ ठाटबाट से आप लाटसाहब के खेमे के पास पहुँचे। जब महाराज का हाथी निकट आया तो लाट साहब भी हाथी पर सवार होकर खेमे से बाहर आए और महाराज अपने हाथी से उठकर लाटसाहब के हाथी पर चले गए। लाट साहब ने उठ कर हाथ मिला कर उन्हें बैठाया और दोनों मे कुशल प्रश्न की बातचीत होने लगी। योंही बात चीत करते हुए हाथी खेमे के भीतर पहुँचा और दोनों महा शय हाथी से उतर कर हाथ में हाथ मिलाए भीतर सोने की कुर्सियो पर जा विराजे तथा फकीर अजीजुद्दीन और कैप्टन वीड की मारफत दोनों मे बातचीत होने लगी। लाट साहब ने महाराज की बहादुरी और प्रजापालन की बडी प्रशसा की तथा महाराज बृटिश गवर्नमेंट के शिष्टाचार, भद्रता और राज्य प्रबंध की सराहना करते रहे। महाराज ने ग्यारह सौ अशर्फियाँ लाट साहब के सिर पर न्योछावर कीं, लाटसाहब ने भी उतना ही सुवर्ण महाराज के सिर पर वारा। इसके बाद महाराज ने अपने सब सरदारो को लाटसाहब से परिचित करवाया और लाटसाहब ने अपने स्टाफ (कर्म्मचारियो) से महाराज की भेंट करवाई। इस दरबार की छटा भी निराली थी। एक ओर तो युरोपियन जेंटिलमेन और नाजुक बदन गौरवर्ण लेडियाँ अपनी सादी पोशाक मे कुर्सियो पर विराजमान थीं और दूसरी तरफ बहुमूल्य मखमली और जरदोजी पोशाक पहने श्यामवर्ण के लंबी लंबी काली दाढ़ी वाले पच हत्थे सिक्ख जवान तलवार बाँधे और मोछ उमेठे बड़ी अकड

के साथ अपनी अपनी कुर्सियों पर बैठे हुए थे। दोनो एक दूसरे की ओर उत्सुक भरी दृष्टि से देख रहे थे और न जाने मन म क्या क्या समझ रहे थे। एक ओर श्वेत और दूसरी आर श्याम, खासा गगा जमुना का सगम था और दोनों के हृदय के भाव भीतर ही भीतर प्रीति और मेल (सगम) की सूचना करते हुए सरस्वती बन कर ठीक त्रिवेणी सगम का छटा दिख रहे थे और यह दरबार खासा प्रयागराज बन रहा था। परिचय का कार्य्य समाप्त हो जाने पर लाट साहब ने भेट की चीजे मँगवाई जो ला कर महाराज के सामने इस प्रकार से उपस्थित की गई—

१—इक्यावन किश्तियाँ किमखाब बनारसी, ढाके के थान और जवाहिरात।

२—एक रत्नजटित तलवार।

३—एक बर्मा का हाथी, चाँदी के हौदे और झूल सहित। यह सब भेट तो महाराज को तथा उनके प्रत्येक सरदार को इक्कीस इक्कीस किश्तियाँ किमखाब इत्यादि की और एक एक घोडा तथा खिलत का चोगा दिया गया तथा बड़ी प्रतिष्ठा के साथ सब से हाथ मिला मिला कर लाट साहब ने सब को बिदा किया। डेरे पर पहुँच कर महाराज ने तीन रत्नजटित कलमदान लाट साहब के पास भेजे, एक स्वयम् उनके, दूसरा उनकी लेडी साहबा के और तीसरा चीफ सेक्रेटरी साहब के व्यवहार के लिये था। दूसरे दिवस स्वय लाट साहब महाराज के खेमे में मिलने गए, जहाँ बड़ी तैयारियाँ हो रही थीं। दरबार गृह का खेमा बिलकुल काश्मीरी पशमीने का था, जिस पर बड़ी

नफीस कारीगरी की गई थी और भूमि पर फारस का मख-मली मोटा गलीचा बिछा हुआ था, जिसके गुलाब के फूल सच्चे पुष्प का धोखा दे रहे थे और उन पर पैर रखते जी सहमता था। गलीचे पर आमने सामने अर्धचन्द्राकार दोनों ओर सोने चाँदी की गंगाजमनी कुर्सियाँ लगी हुई थीं तथा एक ऊँचे चबूतरे पर दो कुर्सियाँ सुवर्ण की रत्नजटित रक्खी हुई थीं जिन पर जरदोजी का मखमली चन्द्रातप टँगा हुआ था जिसमें से मोतियों की झालरें लटक रही थीं। जब लाटसाहब पहुँचे तो महाराज ने स्वयं खेमे से बाहर निकल कर हाथ पकड़ कर लाटसाहब को चबूतरे की कुर्सी पर ला बिठाया और सरदारों ने लाटसाहब के आगे नजरें उपस्थित कीं। कप्तान वीड साहब ने महाराज के आगे सब अँगरेजी कर्म्मचारियों को उपस्थित किया जिन सबों से महाराज ने हाथ मिलाया और सब के यथास्थान स्थित हो जाने पर वेश्याओं का नृत्य वाद्य होने लगा।

यह सब हो जाने के बाद महाराज की ओर से भेंट उप-स्थित की गई जो नीचे लिखे अनुसार थी—

१—एक सौ एक्यावन किश्तियाँ पश्मीने, जवाहिरात और किमखाब इत्यादि की।

२—एक हाथी मय चाँदी के हौदे और जरदोजी झूल के।

३—दो घोड़े जीन इत्यादि से दुरुस्त।

४—एक रत्नजटित तलवार।

५—एक रत्नजटित कमान।

इन नजरों के पेश होने के बाद लाटसाहब वि [illegible] हुए और

उस दिवस सन्ध्या को महाराज ने एक सान्ध्यमिलन (Evening Party) का उत्सव रचा जिसमें लाटसाहब अपने साथियों के साथ सादर आमंत्रित किए गए। सामने लंबी टेबुल बिछ गई जिस पर ज़रदोज़ी काम का बहुत नफ़ीस मखमली कपड़ा पड़ा था और ऊपर करीने से तरह तरह के सुंदर गुलदस्ते लगे थे और सुनहरी रिकाबियों में उत्तम उत्तम सरस व्यंजन, काबुली मेवे और ग्लासों में अंगूरी शराब चमक रही थी। महाराज और लाटसाहब दोनों ने आमने सामने बैठकर भोजन और पान करना आरम्भ किया तथा महाराज अपने हाथ से ग्लास भर भर कर लाटसाहब को देने लगे। एक के बाद एक कई ग्लास उड़ गए और दो तरफ खूब स्वास्थ्यपान की धूम रही। सामने नाचरंग और गान वाद्य अलग ही अपनी छटा दिखा रहा था, तात्पर्य्य यह कि रात एक बजे तक नाच जलसा होता रहा और शराब का दौरा चलता रहा। दूसरे दिवस लाटसाहब ने अपने यहाँ महाराज को बुला कर घुड़-दौड़ और कवायद दिखलाई। महाराज के साथी सरदारों ने भी तरह तरह के वीरतासूचक करतब दिखाए और स्वयं महाराज ने एक तेज दौड़ते हुए घोड़े पर सवार होकर अपनी तलवार की नोक से एक पीतल के लोटे पर खत खींच कर लोगों को चकित कर दिया। यह सब हो जाने पर दोनों महाशयों की अंतिम भेंट हुई और परस्पर प्रीति सम्भाषण और हाथ मिला कर दोनों विदा हुए। एक नवीन सन्धिपत्र पुनः प्रस्तुत किया गया और फिर से दोनों के दस्तखत और मोहर होकर दोनों ने "जोरी प्रीति दृढ़ाई"। इसके बाद महाराज ने लाट

साहब के चीफ सेक्रेटरी को बुलाकर यह सलाह की कि अँगरेज और सिक्ख दोनों मिल कर सिंध पर चढ़ाई करें, पर चूँकि अँगरेजों का दूत पहले ही से सिंध में जा चुका था, इस लिये यह मंत्रणा सफल नहीं हुई। अस्तु महाराज सीधे लाहौर लौट गए।

इन्हीं दिनों कंधार का सूबा भी महाराज के पास भेंट इत्यादि भेज कर मित्रता का इच्छुक हुआ। महाराज ने उसकी भेंट सादर स्वीकार की तथा खिलत इत्यादि देकर उसके दूत को विदा किया। इसके बाद ब्रिटिश गवर्नमेंट ने इस इच्छा से कि सिंध नदी की राह से काबुल, पेशावर और हिंदुस्तान में व्यापार चल सके, सब बातें तय करने के लिये कप्तान वीड साहब को लाहौर भेजा। कप्तान साहब की बात को बहुत कुछ सोच विचार कर महाराज ने स्वीकार किया। इसके बाद लेफ्टेंट बूस साहब बुखारा जाने के लिये लाहौर पधारे। महाराज ने उनकी बहुत खातिर की और उनकी रक्षा के लिये साथ में सिक्खों की एक कंपनी कर दी। इन्होंने महाराज के बारे में अपनी पुस्तक में लिखा है—

"I never quitted the presence of a native of Asia with such impressions as I left this man without education and without a guide He conducts all the affairs of his kingdom with surpassing energy and vigour and yet he weilds his power with a moderation quite unpreceden-ted in a Eastern prince"

किसी भी एशिया निवासी से विदा होते समय मेरे चित्त पर ऐसा प्रभाव नहीं पड़ा है जैसा कि विद्या और चाल्क-विहीन होते हुए भी, इस मनुष्य से विदा होते समय हुआ है। ये अपनी रियासत का सब इतजाम बड़ी मुस्तैदी और तेजी से करते हैं और खूबी यह है कि अपनी शक्ति का उपयोग ऐसी मृदुता के साथ करते हैं कि इसका जोड़ किसी पूर्व देश के शासक में मिलना कठिन है।"

इसके कुछ दिन बाद बृटिश दूत सर एलेकजेंडर वर्नस (Sir Alexaudar Burues) साहब व्यापार सबधी सुलह की बातचीत करने के लिये काबुल गए। जब इन्होंने अमीर काबुल के सामने यह प्रस्ताव उपस्थित किया तो उसने कहा कि "रणजीत ने मेरा बहुत सा इलाका छीन लिया है, सो आप उनसे मुझे वापस दिलवा दें या उनके विरुद्ध मेरी सहायता करें तब तो आपसे आगे कोई बातचीत हो सकती है।" वर्नस साहब को भला यह बात कब स्वीकार हो सकती थी, इसलिये अमीर काबुल के प्रस्ताव से उन्होंने साफ नाहीं कर दी। इस पर अमीर काबुल ने बृटिश दूत को तुच्छ समझा और रूस के दूत को बुला कर वह षड्यन्त्र रचने लगा। बृटिश गवर्नमेंट ने अपने दूत को वापस बुला लिया और अमीर काबुल को उसकी धृष्टता का दड देना निश्चय किया और तत्कालीन अमीर दोस्तमुहम्मद खाँ को काबुल की गद्दी से उतार शाहशुजा को सिंहासन पर बैठाने की तैयारी होने लगी। इसके लिये महाराज लाहौर की सहायता जरूरी थी, इसलिये अँगरेजों की ओर से कप्तान ओसबर्न (Captain Osborne)

जनरल मैकनाटन और कप्तान वीड साहब, महाराज से सलाह बात तय करने के लिये लाहौर भेजे गए। महाराज इन दिनों अदीना नगर में थे। वहाँ ये तीनों ब्रिटिश दूत सिधार। पहुँचने पर महाराज ने अपने पौत्र, शेरसिंह के सात वर्ष के पुत्र को इन लोगों के स्वागत के लिये भेजा। यह बालक बड़ा चतुर, होनहार और सुंदर था। साहब लोग इससे मिल कर बहुत प्रसन्न हुए और कप्तान वीड ने अपनी पुस्तक में यों लिखा है—

He is one of the most intelligent boys I ever met with, very good looking and with singularly large and expressive eyes His manners are in the highest degree attractive, polished and gentleman like and totally free from all awakardness so generally found in European children of that age In the course of conversation I asked him if his matchlock was a real one and if he ever shot with it He jumped off his chair highly indignant at the question and after rapidly loading his musket exclaimed "Now what shall I shoot?" I replid, I saw nothing in the camp at present, it would be safe to shoot at and asked him if he thought he could hit a man at a hundred yards' distance to which he replied without a moment's hesitation pointing to a crowd of sikh chiefs and

soldiers that surrounted the tent "These are all your friends, but show me an enemy to the British Government and you shall soon see what I can do"

साहब कहते हैं कि "मैंने ऐसा बुद्धिमान बालक कभी नहीं देखा। यह बड़ा सुंदर है, और इसकी बड़ी बड़ी आँखों से एक अजीब भाव टपकता है। इसके अदब कायदे और शिष्टाचार खासे भद्रपुरुषों के से हैं जिससे सहज ही इसकी तरफ मन खिंच जाता है और इस उम्र के युरोपियन बालकों में जो उद्दंडता पाई जाती है, उसका इसमें कहीं लेशमात्र भी नहीं है। बातों बात में, मैंने उससे पूछा "क्यों जी, क्या यह तुम्हारी बंदूक असली है, तुमने क्या कभी इसे चलाया है"। मेरी बात सुनते ही वह मारे क्रोध के कुर्सी पर से उछल पड़ा और चटपट अपनी बंदूक भर कर कहने लगा "कहिए अब किस पर गोली मारूँ"। मैंने जवाब दिया कि "इस समय तो मैं कोई ऐसी वस्तु नहीं देखता जिस पर निशाना लगाना बे जोखिम हो" और साथ ही पूछा कि-"अच्छा क्या तुम सौ गज की दूरी पर इस बंदूक से किसी आदमी को चोट पहुँचा सकते हो।" इसके जवाब में बिना जरा हिचके उसने फौरन सामने के कुछ सिक्ख सर्दारों और सिपाहियों की ओर इशारा करके कहा "देखिए, ये सब तो आपके दोस्त हैं, मुझे कोई अँगरेज सर्कार का दुश्मन बतलाइए, फिर देखिए कि मैं क्या कर सकता हूँ।"

इस बालक के शिष्टाचार से ये लोग बहुत प्रसन्न हुए

और ता० १९ मई सन् १८३८ ई० को महाराज के सामने उपस्थित हुए। इस दिन तो कुछ बातचीत न हो पाई। सारा दिन लाट साहब की ओर से जो सब तोहफ़े इत्यादि आए थे, उन्हीं के लेनदेन में व्यतीत हो गया। दूसरे दिन प्राइवेट में मिल कर इन लोगों ने रणजीतसिंह को लाट साहब की चिट्ठी पढ़ सुनाई और अपना मनसूबा प्रगट किया जिसका खुलासा यह था कि "या तो आप स्वयं दोस्तमुहम्मद ख़ाँ को काबुल की गद्दी से उतार कर शाहशुजा को बैठा दें या इस कार्य्य में हमारी सहायता करें"। महाराज ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया। यद्यपि उनके सरदार लोग सहमत नहीं थे, पर महाराज ने आगा पीछा सब सोच कर इसमें कुछ बुराई नहीं समझी और इस कार्य्य में अँगरेज़ो की सहायता करना निश्चय कर लिया। जब महाराज ने यह बात स्वीकार कर ली तो शुजा जो कि निकाला हुआ लुधियाने में दिन बिता रहा था, लाहौर बुलवाया गया और तीनों में मिलकर यह निश्चय हुआ कि, स्वयं शुजा काबुल पर चढ़ाई करे और अँगरेज़ तथा रणजीत सिंह की सेना इस काम में उसकी सहायता करे। इसके बदले शुजा अँगरेज़ों को सिंध, शिकारपुर और दो लाख रुपया वार्षिक कर देगा तथा रणजीत सिंह को जलालाबाद का क़िला अर्पण करेगा, तथा उसकी पाँच हज़ार फ़ौज सदा पेशावर की सीमा पर रहेगी। इन सब बातों के तय हो जाने पर फ़िरोज़पुर में सेना इकट्ठी होने लगी। यद्यपि इस सन्धि से महाराज को कुछ देर के लिये यह आशङ्का हुई थी कि सतलज की तरह सिंध और पेशावर की तरफ़ भी उनकी शक्ति का

प्रकार होता जाता है पर जनरल मेकनाटन साहब ने जब महाराज को अँगरेजों का उद्देश्य अच्छी तरह समझा दिया तब महाराज को कोई खटका न रहा और ये सलाह के अनुसार कार्य करने में तत्पर हो गए, तथा रही सही शंका मिटाने के लिये तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड अकलैंड साहब स्वयं महाराज से मिले और आपस में बातचीत कर सब तय कर लिया गया। इसीके अनुसार दस हजार सेना के साथ शाहशुजा ने फेरा और सिंध की राह से कंधार पर चढ़ाई की। इन सिपाहियों में सिक्खों की भी छ सहस्र सेना आ मिली। इस चढ़ाई में महाराज ने अँगरेज और शाहशुजा दोनों से यह प्रतिज्ञा करवा ली थी कि कोई अँगरेजी या मुसलमान सिपाही गो वध नहीं करेगा और निगरानी के लिये अपने होनहार पौत्र कुँवर नौनिहालसिंह को उन्होंने संग कर दिया था। अस्तु कंधार दखल करता हुआ ता० ८ मई सन् १८३९ ई० को शाहशुजा काबुल की गद्दी पर विराजमान हुआ और दोस्त मुहम्मद पहाड़ों में भाग गया। ता० ११ जुलाई को गजनी का पतन हुआ तथा सब इंतजाम ठीक कर सिक्ख सेना लाहौर वापस आ गई।

महाराज ने अपने जीवन भर अँगरेजों से कभी भी कपट व्यवहार नहीं किया और वे सदा उनके पक्के दोस्त बने रहे, यद्यपि अँगरेजों को आशंका थी कि वे किसी अवसर पर कभी संधि का व्यतिक्रम न करें, पर अपने व्यवहारों से उन्होंने प्रमाणित कर दिया कि जो राजा अपनी जवाबदेही को समझता है वह चाहे निरा अपढ़ मूर्ख भी हो तो भी अपनी प्रतिज्ञा भंग नहीं

करता। यद्यपि रूस और फ्रांस के दूत बराबर महाराज के दरबार मे आते जाते रहे और महाराज उनका यथोचित सत्कार भी करते रहे, पर उनसे किसी प्रकार का राजनैतिक संबंध उन्होंने कभी स्थापित नहीं किया और सदा जिस रंग में वे रँगे उसीमें रँगे रहे। यद्यपि काबुल की चढाईवाले मामले में तथा लार्ड बेंटिंक से भेट करती बार उनके सरदारो ने अँगरेजो की ओर से उनके चित्त में कई प्रकार की आशंकाएँ दिलाई, पर उन्होंने इन सारी आशंकाओं को निर्मूल समझ कर, अँगरेजों से कभी बिगाड नहीं किया और इसका फल भी हाथों-हाथ पाया। उनका बल और प्रताप दिनोंदिन बढता गया और संधि पाश से बँधे रहने के कारण फिर अँगरेजो ने भी कई लोगों की प्रेरणा होने पर भी रणजीतसिंह से कोई छेडछाड नहीं की और योंही प्रबल प्रतापी ब्रूटिश गवर्नमेंट के बगल ही में एक प्रबल स्वतंत्र सिक्ख (हिंदू) राष्ट्र स्थापित हो गया और यदि महाराज के वंशधर भी वैसे ही बुद्धिमान होते तो लाहौर का राज्य यों थोड़े ही दिनो में तीन तेरह होकर चौपट न हो जाता। पूर्वीय देशो मे प्राय स्वतंत्र राष्ट्र के कायम करने और चलाने की शिक्षा का कोई वैज्ञानिक शास्त्र आजकल लोगों को नहीं पढाया जाता। चाहे प्राचीन समय में इस विद्या का प्रचार रहा हो, पर पीछे से बिलकुल नहीं रहा है, इसी कारण से मुसलमानी राष्ट्र के नष्ट होने के बाद जो दो एक माई के लाल स्वतंत्र हिंदू राष्ट्र कायम कर सके, उनके मरते ही वह राष्ट्र नाश को प्राप्त हो गया, मानो वही एक बंधन थे, जिसने अनगढ़ वस्तुओं को एक संग बाँध रक्खा था। यही हालत यहाँ

भी हुई। रणजीतसिंह के मरते ही उनके घराने में ऐसी योग्यता वाला कोई पुरुष न रहा जो इस सिक्ख राष्ट्र को सँभालता। बड़ी बुरी सायत में इन्होंने अँगरेज़ों से बैर ठान कर अपने पैर में आप कुल्हाड़ी मारी और रणजीतसिंह के प्रचंड उद्यम और सारे जीवन भर की कमाई पर पानी फेर दिया

सातवाँ अध्याय।

कुँवर नौनिहालसिंह का विवाह।

हिंदू विश्वास के अनुसार राजा के घर पौत्र का होना बड़े ही आनंद का दिन है, फिर उसके विवाह के अवसर के आनंद का तो कहना ही क्या है। बड़े बड़े राजा महाराजो के यहाँ प्रथम सतान ही कठिनता से होती है, फिर पौत्र तो दूर की बात है, पर महाराज रणजीतसिंह इस विषय में बड़े भाग्य-वान थे। कई पुत्रो के सिवाय उन्हें पौत्रों के भी सुख देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था तथा अपने सब से बडे पौत्र कुँवर नौनिहालसिंह के विवाह पर उन्होंने जैसा उत्सव मनाया था, वैसा उत्सव पजाबनिवासियो ने कभी नहीं देखा। यह विवाह संवत् १८९१ विक्रमी में सरदार श्यामसिंह अटारीवाले की कन्या से ठहरा था। जब विवाह के दिन निकट पहुँचे तो महाराज ने अपने सब मित्र सर्दार, पहाड़ी राजे, सतलज पार की रियासतों के तथा अन्य बडे बड़े राजा महाराजो, रईसो सबो को नेवता भेजा और बृटिश गवर्नमेंट को भी इस विवाह में शामिल होने के लिये सादर निमंत्रण दिया। थोड़े ही दिनो में मेहमान लोग आने लगे और नाना प्रकार की पताका और झडियो से सुशोभित उनके खेमे लाहौर के बाहर पड गए। बृटिश गवर्नमेंट की ओर से प्रधान सेनापति सर हेनरी फेन साहब (Commander-

in chief Sir Henry Fane) अपनी शरीररक्षक (Body guard) सेना के साथ बड़े ठाटबाट से पधारे और झींध, पटियाला, नाभा इत्यादि पजाब के सभी स्वतत्र और परतत्र नरेशो ने आकर विवाह की शोभा बढाई। इन दिनो लाहौर नगरी की अपार शोभा थी। रात दिन राजद्वार पर नौबत झरती थी। जिधर देखो उधर रग बिरगे वस्त्र पहिने नाना प्रकार के सिपाही बाँकी पगड़ी बाँधे और हथियार कसे किले के भीतर रात दिन आते जाते थे। सारा नगर तोरण वन्दनवार और पुष्पमाला से सुशोभित हो कर हँस रहा था। स्वय महाराज बडी मुस्तैदी से विवाह की सारी तैयारी में व्यस्त थे और अपने स्वभाव के अनुकूल प्रत्येक कार्य को दक्षतापूर्वक देखते और जाँचते थे। धीरे धीरे करीब पाँच लाख के बराती मेहमान इकट्ठे हो गए। सब के यथोचित सत्कार और खानपान का प्रबध था। प्रत्येक राजा या रईस अपनी अपनी प्रतिष्ठा के अनुसार, दस, पाँच से ले कर हजार दो हजार तक सेना सिपाही और सेवक अपने साथ लाया था। महाराज की ओर से सब का यथोचित खानपान से ऐसा सत्कार किया गया कि सब लोग धन्य धन्य करने लगे। सब लोगो के इकट्ठा हो जाने पर अमृतसर से बरात निकलने का प्रबध होने लगा तथा बरात के लिये सजधज कर सब लोग अमृतसर पहुँच गए। जिस दिन घोडी चढने का दिन था बड़ा भारी पूजा मडप रचा गया और श्रीहरिमदिर जी में ग्रथ साहब की अरदास और कड़ाह प्रसाद करने के बाद महाराज ने अपने हाथ से वर के सिर पर मोतियों का सेहरा बाँध दिया। इस रस्म के

होते ही गोविंदगढ़ के किले से दनादन सलामी की तोपें छूटने लगीं और एकबार ही नाना प्रकार के बाजे गाजे बजने लगे। अब तबोल की बारी आई। सब से पहले बृटिश गवर्नमेंट के प्रतिनिधि सर हेनरी फेन साहब ने ग्यारह हजार रुपया तबोल दिया। इनके बाद महाराज के प्रधान अमात्य राजा ध्यानसिंह ने एक लाख पचीस हजार रुपया भेट किया। कई राजा, महाराजों और सरदारों ने इक्यावन इक्यावन हजार रुपया तबोल में अर्पण किया। प्रत्येक जागीरदार ने भी अपनी हैसियत से बढ बढ कर तबोल दिया, यहाँ तक कि खालसा सेना के प्रत्येक सिपाही ने भी अपना एक एक मास का वेतन दस दस रुपया तबोल में भेट कर दिया। सब मिला कर करीब एक करोड़ रुपए के तबोल में आ गया। एक ओर नाचरंग का समा अलग जमा हुआ था और दूसरी ओर बरात की रस्म पूरी हो रही थी। महाराज ने भी इस मौके पर जी खोल कर अपने प्रताप और ऐश्वर्य का परिदर्शन कराया। जिसको देखो मखमली जरदोजी पोशाक और सोने हीरे के जवरों से सजा सजाया दृष्टिगोचर होता था, यहाँ तक कि सेना के हरेक सिपाही को भी महाराज की ओर से बनारसी जरी का साफा इनाम में दिया गया था। करीब चार पाँच हजार के तो केवल बाजेवाले ही थे, इसके सिवाय मशालची, आतिशबाजी वाले, नृत्य गीत करनेवाली वेश्याएँ, भाँड़ो की तो कुछ गिनती ही न थी। जो आया वही शामिल हो गया। तात्पर्य यह कि यह बरात क्या एक बड़ा भारी मेला था। हजार ग्यारह सौ हाथियों की कतार की कतार, हौदे और झूल के

दुरस्त जिन पर बड़े राजे महाराजे और सरदार लोग सवार थे, उतने ही ऊँट और करीब बीस पचीस हजार के घोड़े सब जीन और चाँदी के जेवरों से दुरुस्त अपनी ठुमुक चाल से उच्चैश्रवा को भी मात करनेवाले चले जा रहे थे। स्वयं महाराज की पचास हजार के करीब सेना तथा अन्य नरेशों की भी कई लाख सेना सब करीब पाँच लाख आदमियों की भीड़ भाड़ के साथ बरात अटारी को रवाना हुई। लाखों तमाशबीन बरात देखने के लिये ठट्ट के ठट्ट सड़क के दोनों ओर जमा थे। इतना भारी भीड़ भड़क्का हुआ कि सैकड़ों तमाशबीन तो कुचल कर मर गए। दनादन तोपों की गड़गड़ाहट और ढोल, नफीरी सहनाई और ताशे के शब्द से कान के पर्दे फटे जाते थे। नाना प्रकार के तख्तों पर फुलवारियाँ सजी हुई थीं और कई तख्तों पर नृत्य-गीत कुशल अंगनाएँ अपना अपना करतब दिखला रही थीं। स्वयं महाराज एक चाँदी सोने के जड़ाऊ हौदे पर हाथी की पीठ पर सवार अपने हाथ से अशर्फियाँ लुटाते हुए जा रहे थे। इनके सिर पर बाँकी हीरे की कलगी, गले में गजमुक्ता की माला और भुजबंद में विख्यात 'कोहनूर' हीरा चमक रहा था। यही भारत में 'कोहनूर' की आखिरी चमक थी। फिर न चमका! अस्तु बड़े ठाटबाट से, जिसका पूरा वर्णन करें तो खासा एक पोथा तैयार हो जाय, यह बरात अटारी पहुँची। सरदार श्यामसिंह अटारीवाले ने अपने वित्त से बढ़ कर बरातियों का स्वागत किया और पाँचों लाख बरातियों के भोजन पान का यथोपयुक्त प्रबंध कर सब को प्रसन्न कर दिया। नौ बजे रात्रि को सहस्रों ब्राह्मणों द्वारा उच्चरित

वेदमन्त्रों के बीच पाणिग्रहण हुआ तथा दूसरी तरफ नाचरग का जलसा जमा हुआ था जहाँ दूर दूर की नृत्य गीत में कुशल वारागनाएँ तथा कलावंत अपने गुणों से बरातियों को रिझा रहे थे। बीच मे रत्नजटित सुवर्ण की कुर्सी पर महाराज और इर्द गिर्द अर्धचन्द्रकार आगत नरेश और सर्दार लोग सोने चाँदी की कुर्सियो पर बैठे हुए नाचरग का आनद ले रहे थे। जिधर देखो जडाऊ हीरे और मोतियो के हार तथा मखमली जर-दोजी तथा कमखाब की पोशाक लकॉदक चमक रहे थे। आँख नहीं ठहरती थी। महाराज के पीछे हाथो में नगी तलवार लिए, बनारसी साफा बाँधे उनके शरीररक्षक सिपाही खड़े हुए थे। यह समा भी देखने ही लायक था। कहाँ तक वर्णन किया जाय। अस्तु सकुशल विवाह की रस्म पूरी हो जाने के बाद समधी ने प्राय एक लाख से अधिक ब्राह्मणो तथा मगतो को एक एक रुपया भूरसी दक्षिणा दिया तथा नीचे लिखी दहेज महाराज के सामने उपस्थित की—

एक,सौ एक अरबी और काठियावाड़ी घोड़े जिन पर मखमली कारचोबी चारजामे-पड़े हुए थे और जो सोने चाँदी के जेवरों से तथा जीन रिकाब से दुरुस्त थे।

एक सौ एक बडी बडी नागौरी अति उत्तम गाएँ।

एक सौ एक भैंस जो खासे छोटे हाथी सी प्रतीत होती थीं।

दस ऊँट।

ग्यारह हाथी, चाँदी के हौदे और कारचोबी के झूल सहित।

इसके सिवाय सैकडों किश्तियाँ- जडाउ जेवरों की थीं और चाँदी सोने के बर्तन तथा बनारसी किमखाब वगैर की

भी एक हजार से कम किश्तियाँ न थीं। दूसरी ओर पाँच सौ किश्तियों में तरह तरह के काश्मीरी पशमीने के सामान अलग ही थे। गोटे किनारी के रेशमी कपड़े और जरदोजी मखमली पोशाकों का तो गिनना ही कठिन था। तात्पर्य्य यह कि लड़कीवाले ने महाराज ऐसा समधी पा कर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। कई मील तक नाना प्रकार की आतिशबाजियाँ छूट रही थीं और प्रति रात को पान भोजन और नाच जल्से का समा बँधा रहता था। योंही हँसी खुशी और नाच जलसे में कई दिवस व्यतीत हो गए। *नित्य महाराज विदा माँगते और सरदार श्यामसिंह विनय* कर के ठहरा लेता। याही दो सप्ताह गुजर गए और सरदार सारे बरातियों की तब तक पूरी खातरी करता रहा, उसने किसी को किसी बात की तकलीफ नहीं होने दी। नगर के बाहर कई मील तक मिठाई तथा और सब समान की दुकाने लगा हुई थीं। सारे बराती बिना मूल्य यथायोग्य सामान पाते थे। जब दो सप्ताह बीत गया और राजकार्य्य में हरजा पड़ने की आशका से महाराज ने उसी रोज विदा होना निश्चय कर लिया तो बड़े ठाट से सोने की पालकी पर चढ़ा कर सरदार श्यामसिंह ने दुल्हिन को विदा किया और हाथ जोड़ नम्रतापूर्वक कहा "महाराज! सरकार ने रिश्तेदारी कर इस अधीन की प्रतिष्ठा बढ़ाई है, मेरी सामर्थ्य कहाँ कि मैं सरकार की उचित खातिरदारी कर सकता, त्रुटि तो मुझसे पैर पैर पर हुई है सरकार अपनी उदारता से क्षमा करेंगे।" उत्तर में महाराज ने मीठे बचनों से सरदार को प्रसन्न कर लाहौर की ओर पयान किया।

जब बरात सकुशल लाहौर वापस आई तो महाराज ने अपने यहाँ शालाबाग में बड़ाभारी उत्सव रचा और बाग की दीवारों और रविशो पर खूब रोशनी की गई और नाना प्रकार के पुष्पों की सुगंधि तथा गुलाब केवड़े के छिड़काव से शालाबाग नंदनकानन बन गया। एक ओर सैकड़ों फव्वारे छूटते हुए अपनी बहार अलग ही दिखा रहे थे तथा दूसरी ओर नाचरंग का जलसा जमा हुआ था। महाराज ने समागत नरेशों और सर्दारों का पान भोजन तथा नाच तमाशे से खूब सत्कार किया तथा अँगरेज मेहमानों को एक बड़े ठाट की डिनर पार्टी (ज्याफ्त) दी जिसमें अँगूरी शराब पी पी कर साहब लोग अपनी लेडियों के साथ खूब ही नाचे कूदे। भारतीय प्रजावृंद के लिये यह दृश्य अनोखा ही था। एक ओर नृत्यकलाविशारद देशी वेश्याओं का हावभावपूर्ण नाच और दूसरी ओर युरोपियन ढंग की उछल कूद दोनों अपना अपना ढंग दिखा रहे थे। साहबों के टेबुलों पर लाल लाल अंगूरी शराब चमक रही थी और स्वयं महाराज भी इन लोगों में शामिल होकर अपने हाथों से गिलास भर भर कर कमांडर-इन चीफ साहब को दे रहे थे तथा साथ ही साथ गूढ़ राजनैतिक बातों पर प्रश्न भी करते जाते थे। यथा ब्रूटिश गवर्नमेंट की भारत में कितनी सेना है, गोरे कितने हैं और काले सिपाही कितने हैं, फारस और रूस से आप लोगों का कैसा बर्ताव है और ब्रूटिश इंडिया पर उस बर्ताव का क्या प्रभाव पड़ता है। इन सब बातों का उत्तर कमांडर साहब बहुत सोच सोच कर धीरे धीरे शांतिपूर्वक देते थे और महाराज की

दक्षता और राजकार्य की निपुणता पर चकित होते थे। इस उत्सव के समाप्त होने पर वृटिश प्रतिनिधि ने महाराज को बहुत सी मूल्यवान वस्तुएँ भेंट की जिन्हें सहर्ष स्वीकार कर महाराज ने कमांडर साहब के साथ जा कर अँगरेजी तोपखाने की कवायद देखी और तोपखाने की बनावट, उसके चलाने और शेल तथा गोले बारूदों का सब ब्योरा पूछा और स्वयं जा कर तोपों को घुमा फिरा कर देखा। फिर दूसरे दिन फ्रेंच जनरलों द्वारा युरोपियन कवायद सीखी हुई अपनी अठारह हजार सेना की कवायद कमांडर साहब को दिखाई, जिसकी चुस्ती और निपुणता को देख कर कमांडर साहब दंग रह गए। अँगरेजी कवायद में तोपों के पुर्जे पुर्जे अलग कर के फिर तत्काल ही बना कर समूची तोपें खड़ी कर देना, महाराज के लिये बड़ी कैफियत की बात थी। महाराज ने अँगरेजी तोपों के निशाने की भी परीक्षा ली तथा गोलंदाजों को पुरस्कृत किया। इसके बाद दूसरे दिन वृटिश लेडियों की महाराज की रानियों से भेंट मुलाकात हुई। एक ओर बनारसी और कारचोबी लहँगे और साड़ियाँ तथा हीरे मोती पन्ने के आभूषण और रसभरी पंजाबी आँखें तथा सेब ऐसे गुलाबी कपोल और दूसरी ओर श्वेत, नील, काले साटन और मखमल की सादी पोशाक और प्रायः आभरणशून्य भूरी आँखोंवाली श्वेतरंग महिलाओं का जमघट—यह दृश्य ऐसा था मानो डूबते हुए सूर्य और उदय होते हुए चंद्रमा का पूर्व और पश्चिम से समागम, होकर एक ठौर मिलाप हो गया हो। दोनों तरफ वाली दोनों को बड़े कौतुक भरी दृष्टि से निहार रही थीं और मुसकरा

रही थीं। इशारे ही इशारे में जो कुछ बातचीत हो सकी हुई और पान इलायची से सत्कार पा कर मुसकराती हुई लेडियाँ विदा हुईं। दोनों ने परस्पर एक दूसरे को क्या समझा, यह तो भगवान ही जाने, पर जो हो समागम था अनोखा। इसीके तीन दिन बाद होली का त्यौहार था। इसलिये महाराज ने किसीको बिदा नहीं किया और खूब नाच जलसे के बीच होली खेली गई। महाराज ने अपने हाथों से कमांडर साहब के कपोलों पर गुलाल मल दी, जिसे उन्होंने "थैंक यू" कह के स्वीकार किया तथा अपनी मित्रता का पूरा विश्वास दिला कर वे विदा हुए। यों यह उत्सव सानंद समाप्त हुआ।

आठवाँ अध्याय ।

रणजीत सिंह का राज्यप्रबंध, राजकर्मचारी और सैन्यबल ।

यद्यपि महाराज के लिये 'काला अक्षर भैंस बराबर' था, पर राज्य प्रबंध में उस समय के अच्छे अच्छे योग्य नरेशों के वे कान कतरते थे । एक ब्रूटिश गवर्नमेंट को छोड कर, उस समय की कोई देशी रियासत ऐसी न थी जिसकी समानता महाराज के राज्य शासन से दी जा सके । यह तो नहीं कहा जा सकता कि ब्रूटिश गवर्नमेंट के ऐसा प्रबंध था, क्योंकि ब्रूटिश राज्य प्रबंध सैकड़ो विचारवानो के कई शताब्दियो के अनुभव का सरस फल है, फिर उसकी समता एक अपढ, अपने पैरों पर आप खड़े होनेवाले, नाना प्रकार के विघ्न, विपत्ति और आपसवालो की नोच खसोट के बीच रह कर स्वतंत्र राष्ट्र स्थापन करनेवाले जाट राजा से क्योंकर हो सकती है । पर सब अवस्थाओ को देखते हुए उस समय महाराज का राज्य प्रबंध अनुकरणीय नहीं तो निंदा योग्य भी नहीं था । जिन दिनों महाराज ने लाहौर अधिकृत किया, वहाँ तीन सरदार राज्य करते थे । 'अंधेर नगरी चौपट राजा' का जमाना था । जब जिस सरदार को जरूरत होती, जिस महाजन के कान पकड कर जितना रुपया चाहता वसूल कर लेता । कृषकों से खजाने में रुपया लेने का कुछ नियम न था, जब जिसने तलवार चमकाई

मनमाना खजाना वसूल कर लिया। किसान विचारा रहे चाहे मरे। रणजीत सिंह ने लाहौर पर अधिकार करते ही यह सब अंधेर दूर कर दिया। कोई महाजन अकारण नहीं सताया जाता था। हाँ, जो महाराज के विरुद्ध अस्त्र उठाता या उनकी अधीनताई स्वीकार नहीं करता उससे तो वे अवश्य तलवार के जोर से नजराना वसूल कर लेते थे, पर पहले की तरह साधारण प्रजाओं से बरजोरी एक पाई भी नहीं ली जाती थी। यद्यपि विदेशी इतिहासकार कहते हैं कि महाराज के समय में भूमिकर आजकल से कई गुना अधिक था और राजकर्मचारी मनमानी लूट मचाते थे, पर तत्कालीन किसानों की अवस्था से आजकल के कृषकों की अवस्था और अन्न की भयंकर महँगी को देखते हुए यह बात सत्य प्रतीत नहीं होती। चाहे जो हो, इस बात की बहस करने के लिये यह उपयुक्त स्थान नहीं है, हाँ इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि महाराज के राज्य-शासन की अब भी पुराने बूढ़े तारीफ ही करते हैं।

यह तो ठीक है कि आरंभ में हर एक मिसलवाले मनमाना करते थे और शासन की कोई व्यवस्था न थी, पर यदि सच पूछो तो इनमें से एक रणजीत सिंह ही का राज्य ऐसा हुआ जिसे व्यवस्थापूर्वक राज्य-शासन कहा जा सकता है। ऐसी अवस्था में आजकल की सभ्यतर राज्यसत्ता के सामने यदि रणजीत सिंह के राज्य शासन में कुछ त्रुटियाँ भी दिखाई दें तो उसकी कुछ गिनती न करनी चाहिए, और अकेले इसी कारण से उनकी निंदा करना सरासर भूल है। सिक्खों में वेतनभोगी सिपाहियों की चाल महाराज ही की निकाली हुई थी, क्योंकि अन्य

मिसलवाले अपने अधीनस्थ सरदारों को यथायोग्य भूमि बाँट देते थे और बदले में उनसे सैनिक सेवा लेते थे। राजपूताने की तरह ये फौजी जागीरदार उसी भूमि की उपज पर अपना और अपने सिपाहियों का गुजारा करते थे और इसके लिये बिचारे किसानों से जहाँ तक हो सकता रुपया दुह लेते थे। नव नियमित वेतनभोगी सिपाहियों की चाल निकली तो यह अत्याचार बहुत कम हो गया और किसानों की पुकार महाराज के कानों तक पहुँचने लगी। किसानों के बर्बाद हो जाने से फौजी जागीरदार तो इधर उधर से लूटपाट कर के भी अपना काम चला लेता पर हजार अत्याचारी होने पर भी राजकर्मचारियों को तो नियमित खजाना राजकोष में दाखिल करने के लिये किसानों को बनाए रखना पड़ता ही था, इस कारण से एक अपढ़ शासक के राज्य में भी किसानों पर अत्याचार की मात्रा बहुत घट गई थी। यदि संयोगवश किसान अधिक दरिद्र हो जाते थे, तो किसी न किसी उपाय से घुमा फिरा कर राजकोष का द्रव्य फिर उन्हीं में बाँट दिया जाता था। इसका उदाहरण मुलतान का गवर्नर दीवान सावन मल खत्री था। इसने अपने अधीनस्थ प्रदेशों में सर्वसाधारण के उपयोगी बहुत सी इमारतें, कूप तड़ाग इत्यादि बना कर (पी० डब्ल्यू० डी०) को उनको हरदम जारी रक्खा जिससे प्रजा कभी भी दरिद्र न होने पाई, प्रजा और राजा दोनों इस भले मानुस गवर्नर की तारीफ करते रहे। ऐसे और भी दृष्टान्त दिए जा सकते हैं, जिससे रणजीत सिंह ऐसे अशिक्षित मनुष्य के लिये इस योग्यता का राज्य शासन और

आदमी की परख' देख कर दाँतों उँगली दबानी पडती है। दीवान सावनमल की तो लोग यहाँ तक तारीफ करते हैं कि उसके शासन मे मुलतान प्रदेश मे हरदम सावन ही मचा रहा था अर्थात् सारा प्रदेश हरा भरा था। रणजीत सिंह में 'आदमी की परख' अव्वल दर्जे की थी। एक साधारण सिपाही को भी देखते ही वह पहचान लेता था कि इसमें कहाँ तक की योग्यता है। उदाहरण स्वरूप मेरठ नगर के एक ब्राह्मण दुकानदार का एक किशोरवय बालक लाहौर मे आ कर महाराज की सेना मे भर्ती हुआ। इसका नाम 'खुशला' था। पाँच रुपए मासिक पर इसकी नौकरी लगी। धीरे धीरे इस पर महाराज की नजर पड गई और उन्होंने इसे अपना खास द्वारपाल या जमादार बना लिया। यह अपने कार्य्य मे ऐसा दक्ष निकला कि रात को जब महाराज वेष बदल कर कहीं जा रहे थे, तो इसने बिना परिचय पाए उन्हें जाने न दिया और रात भर अपनी गुमटी में उन्हें बैठाल रक्खा। महाराज उसकी चौकसी से बहुत प्रसन्न हुए और उन्हों ने उसे अपना खास शरीर रक्षक बना लिया। जमादार खुशहाल सिंह की प्रतिष्ठा यहाँ तक बढ गई थी कि बिना इसके द्वारा महाराज से कोई भी प्राइवेट मुलाकात नहीं कर सकता था। यों तो भरे दर्बार मे जो चाहे महाराज के सामने अर्जी पेश कर सकता था, पर प्राइवेट मुलाकात जमादार खुशहाल की मार्फत बिना होना असम्भव थी, चाहे वह देशी सर्दार हो, या नरेश हो या ब्रिटिश दूत ही क्यों न हो। किसी सवारी निकलने या दरबार लगने का कुल इंतजाम 'जमादार' के जिम्मे था। इसके भतीजे

तेजा सिंह को महाराज ने राजा की उपाधी दी थी। यह भी अन्यत्र लिखा जा चुका है कि क्योंकर खुशहालसिंह के आगे दौड़नेवाले हरकारों में ध्यानसिंह और गुलावसिंह नामक दो डोगरे नौकर हुए थे और इनमें से ध्यानसिंह बढ़ते बढ़ते महाराज के प्रधान अमात्य (Prime Minister) हो गए। पहले तो खुशहाल के स्थान पर यह जमादार हुआ, फिर अपनी योग्यता से इसने बड़े दीवान की प्रतिष्ठाजनक पदवी पाई। यह और इसके दोनों भाई गुलाव और सुचेतसिंह महाराज के अधीन ऊँचे ऊँचे ओहदों पर थे और राजा कहलाते थे यह भी अन्यत्र लिखा जा चुका है।

यदि कोई अनुभवी और नामी राजकर्मचारी महाराज के पास कहीं से आता तो महाराज समझा बुझा कर उसे अपने पास ठहरा लेते और उससे अपने राजकार्य में सहायता लेते थे। उदाहरणार्थ जब कि अमीर काबुल का एक अनुभवी कर्मचारी दीवान भवानीदास अपने स्वामी से असतुष्ट हो कर लाहौर चला आया तो महाराज ने उसे सादर अपने मन्त्रिमंडल में स्थान दे दिया और राज्य के आयव्यय के नियम कुल उसके आज्ञानुसार वर्ते जाने लगे। जब यह दीवान, महाराज के यहाँ नौकर हुआ तो भूमि-कर से महाराज की वँधी आय कुल तीन लाख रुपया वार्षिक थी। महाराज के यहाँ न तो कोई हिसाव किताव जाननेवाला था और न रखनेवाला। यह रुपया सब अमृतसर के साहूकार रामानद के पास जमा होता था और वही खर्च देता था। इस राज-सेवा के बदले वह निमक की खान का महसूल अपने लिये वसूल कर लेता

था। दीवान भवानीदास ने आते ही सब नियम बदल दिया। एक नवीन नियमावली बना कर महाराज के सामने पेश की गई और उसीके अनुसार तमाम काम होने लगा। एक सदर खजाची (Treasury Lord) मुकर्रर हुआ। इसका नाम प० दीनानाथ था। आगे चल कर अपनी योग्यता के कारण पंडित जी राजा दीनानाथ कहलाए और लाहौर दर्बार में इनकी प्रतिष्ठा किसी से कम न थी, पर दीवान भवानीदास सब का हिसाब जाँचा करता और त्रुटियों का सुधार करता था। सदर खजाची का ओहदा कायम होने के बाद रामानद से कुछ सरोकार न रहा और नमक का महसूल सीधा महाराज के खजाने मे आने लगा। यह कई लाख रुपया वार्षिक था। महाराज की आँखे खुल गई और दूसरे वर्ष भवानीदास का भाई देवीदास भी आ कर अपने भाई का सहकारी दीवान बन गया तथा ये लोग अपने अनुभव से दिन पर दिन लाहौर राज्य की आमदनी बढाने लगे और तहसीलदारो को पेट मोटा करने का मौका न रहा। इधर राजा दीनानाथ जैसा सदर खजाची पाकर महाराज का बहुत उपकार हुआ, क्योंकि हिसाब किताब के सिवाय पंडित जी और भी सब प्रकार के राजकार्य में बड़े दक्ष थे और महाराज की मृत्यु के बाद जब अँगरेजो द्वारा लाहौर में "कौंसिल ऑफ रीजेंसी" स्थापित हुई थी तो पंडित जी को भी इस कौंसिल में स्थान दिया गया था।

इनके अलावा महाराज के दर्बार मे उनके विदेशी मन्त्री (Foreign Minister) फकीर अजीजुद्दीन का नाम भी

उल्लेख योग्य है। यह बुखारा के एक नामी हकीम के घराने में से था और लाहौर पर अधिकार करने के बाद जिन दिनों युवा महाराज के नेत्रों में पीड़ा हुई थी तो इस हकीम के इलाज से पूरी शांति हो गई थी। महाराज इस पर बहुत प्रसन्न हुए और पुरस्कार में कई जागीरें देकर उन्होंने उसे अपना राजवैद्य नियत कर लिया, जिस पद पर रह कर अपनी विद्वता, भद्रता और शिष्टाचार के कारण यह शीघ्र ही महाराज का मुँहलगा हो गया तथा सारे दर्बारी भी इसे मानने और प्रतिष्ठा करने लगे, यहाँ तक कि कुछ दिनों में इसे विदेशी मन्त्री का प्रतिष्ठित और सब से बड़ी जवाबदेही का ओहदा दिया गया। इस ओहदे पर रहकर इसने अपनी पूरी योग्यता दिखलाई और अँगरेज तथा अन्य युरोपियन शक्तियों से बातचीत, पैगाम, इत्यादि की जब कभी जरूरत पड़ती तो फकीर साहब ही आगे किए जाते थे, अथवा जब कभी इन पाश्चात्य नरेशों से किसी राजनैतिक मामले के पेच को सुलझाने की आवश्यकता आ पड़ती तो फकीर अजीजुद्दीन साहब ही उसे खूबी से ठीक उतार कर यश के भागी होते थे। महाराज की ओर से दूत हो कर भी येही वृटिश गवर्नमेंट के यहाँ जाते थे और बातचीत के समय महाराज और वृटिश कर्मचारियों के दुभाषिए भी होते थे। महाराज और वृटिश गवर्नमेंट दोनों के यहाँ इनकी समान प्रतिष्ठा थी और यद्यपि सिक्ख स्वभाव मुसलमानों के प्रति प्रीतिपूर्ण नहीं है, पर फकीर साहब ने अपनी योग्यता, शिष्टाचार, मिष्टभाषण और हेलमेल से महाराज सहित सारे लाहौर दर्बार को अपना

परम मित्र बना लिया था। यह मुसलमानो के सूफी फिर्के को मानता था जो 'वेदांत' का एक रूपांतर मात्र है, और किसी मजहब से द्वेष नहीं रखता था। एक अवसर पर रणजीतसिंह ने इनका मन टटोलने के लिये पूछा कि "क्यों फकीर जी, आप हिंदू मजहब अच्छा समझते है या मुसलमानी ?" इसके जवाब मे फकीर साहब ने कहा था कि "सरकार ! मैं तो, एक अदना सा फितना दुनियाँ के समुदर मे बहा जा रहा हूँ, जब क़िनारे की तरफ निगाह उठाता हूँ तो दोनो मे कुछ भी फर्क नहीं पाता हूँ।" बडे शात धीर और नम्र होने के सिवाय फकीर साहब बातचीत में भी बडे दक्ष और सभाचतुर थे। यह सूफी मजहब पर अच्छी अच्छी कविता भी करते थे जिसकी ध्वनि श्रीमद्भगवद्गीता से मिलती जुलती होती थी। इन्हीं सब कारणों से मुसल्मान होने पर भी इन्होने दर्बार भर को मुग्ध कर रक्खा था और जब कभी बृटिश गवर्नमेंट के यहाँ महाराज की ओर से दूत होकर ये जाते तो वहाँ से भी अपने लिये तारीफ ही लाते थे। तात्पर्य यह कि महाराज के दर्बार मे फकीर अजीजुद्दीन से बढ़ कर कोई भी योग्य कर्म्मचारी न था और महाराज इन पर इतना भरोसा रखते थे कि वे इनके जिम्मे राज्य और राजधानी का कुल इतजाम छोड कर महीनों लडाई पर या चढाई पर चले जाया करते थे। इसके सिवाय और भी कई एक मुसलमान सर्दार महाराज के दर्बार की शोभा बढाते थे जिनमें नवाब मुलतान के दो लडके सरफराज खाँ और जुलफिकार खाँ मुख्य थे। विदेशी दर्बारियो में कई युरोपियन सर्दारों का नाम भी उल्लेख योग्य है। इनमे जनरल

वेंद्वरा मुख्य थे। दूसरे का नाम जनरल एलार्ड था। तीसरे को लोग कोर्ट साहब कहते थे। ये तीनों फ्रेंच थे और विख्यात शाहंशाह नेपोलियन के अधीन नौकरी कर चुके थे। नेपोलियन के अधःपतन होने पर ये लोग रोजगार के लिये बाहर निकले और रणजीतसिंह ने जिनको कि युरोपियन ढंग की फौज तैयार कराने की बड़ी आवश्यकता थी इनको अपने यहाँ नौकर रख लिया। इसके सिवाय जनरल अर्माटेवल एक फ्रेंच और करनल भोन कोरटलैंट एक दूसरा युरोपियन भी महाराज की सेवा में रहता था। जनरल अर्माटेवल से फौजी काम नहीं लिया जाता था। एक आइरिशमैं करनल गार्डनर तोपखाने का अफसर था। इन सबों की अधीनता में महाराज के पास करीब एक लाख के अँगरेजी कवायद सीखी हुई फौज तैयार हो गई थी।

रणजीतसिंह का कुल सैनिक बल इस प्रकार था—

सवार खास, सोलह हजार आठ सौ।	कुल सवार इकतीस हजार आठ सौ।
सवार जागीरदारों के, पद्रह हजार।	

पैदल—

नियमित	अनियमित	अकालिए
बयालिस हजार	पैंतालिस हजार	पाँच हजार

कुल पैदल सेना बानबे हजार।

सवार और पैदल सब मिलाकर एक लाख तेइस हजार आठ सौ।

इसके सिवाय सात सौ पचपन तोपें हरदम तैयार रहती थीं।

हल्की तोपें चार सौ अट्ठाइस।
मैदानी तोपें एक सौ छप्पन।
और किले पर लगी हुई एक सौ इकहत्तर।

नियमित सेना में महाराज के वेतनभोगी सिपाही और सवार थे तथा राज्य की ओर से नियमित किए हुए वर्दी और अस्त्रों से सज्जित रहते थे तथा अनियमित सेना में जागीरदारों के सवारों के सिवाय बहुत से सर्दार और उनके लड़के, नाते रिश्ते के लोग थे जो अपनी इच्छानुसार नाना प्रकार के रंगों के रेशमी मखमली और जरदोजी पौशाक पहनते और बड़े ठाट बाट से अस्त्र बाँध कर झूमते झामते चलते थे।

तोपखाने का अफसर एक युरोपियन था, इसलिये उसमें कोई अव्यवस्था न थी और युद्ध में इस अस्त्र को सब से अधिक उपयोगी जान कर इसकी नियमित उन्नति में महाराज सदा सचेष्ट रहते थे। जब से अमृतसर में अँगरेजी और सिक्ख सिपाहियों में दंगा हुआ था तब से अपनी कुल सेना को युरोपियन ढंग की कवायद और युद्ध-विद्या सिखलाने के लिये महाराज का बड़ा आग्रह हुआ और इन फ्रेंच अफसरों द्वारा इन्होंने अपनी सेना को सर्वोपयोगी बना दिया था।

देशी ढंग की सेना में महाराज की अकालियों की सेना बड़ी कट्टर थी। जब कभी किसी अटूट मोर्चे पर टूट पड़ने की जरूरत पड़ती थी तो यही अकालियों की सेना आगे की जाती थी और ऐसी तेजी से इसकी झपट होती थी कि जीते हुए शत्रु भी पीठ दिखा देते थे। इन सिपाहियों के कट्टरपन और अंधविश्वास के कारण महाराज को हरदम इनसे खटका

ही रहता था और इन्हीं लोगों के कारण अमृतसर में दंगे के समय महाराज को अँगरेजी दूत के सामने आँख नीची करनी पडी थी।

एक तो गुरु गोविंदसिह की शिक्षा ने योंही सिक्खो मे एक नई रूह फूँक दी थी, दूसरे रणजीतसिह ऐसा दक्ष नायक और सर्दार हरिसिह नलुवा ऐसा सूरवीर प्रचड सेनापति पा कर इन सिक्खों ने पजाब भर को थर्रा दिया था और कट्टर पहाड़ी अफगानों के भी दाँत खट्टे कर दिए थे। सर्दार हरिसिह नलुवा खत्री था। वह केवल प्रचड वीर ही नहा, वरन रणविद्या में भी वडा निपुण था। कठिन से कठिन मोर्चे पर वह भेजा जाता और अपनी योग्यता के कारण जय पाता था। युद्धभूमि मे वह क्योंकर मारा गया, यह अन्यत्र लिखा जा चुका है। यद्यपि महाराज का चचेरा भाई सर्दार अतरसिह सिंधानवालिया भी वड़ा वीर था, पर सर्दार हरिसिह को नहीं पा सकता था। इसका नाम 'हरि' और 'सिंह' दोनो ही सार्थक था। इन सब सर्दारों के और सेना के रखने मे महाराज का तीन लाख बयासी हजार अट्ठासी रुपया मासिक खर्च पडता था। यह नियमित सेना का खर्च है जो कि पैंतालिस लाख सतानवे हजार छप्पन रुपया वार्षिक हुआ। लगे हाथ राज्य की आमदनी का लेखा भी सुन लीजिए—

लगान भूमिकर किसानों से—एक करोड उन्नासी लाख पचासी हजार।

कर अधीनस्थ रजवाड़ों से—पाँच लाख पैंसठ हजार।

जागीरें खास—पचानवे लाख पचीस हजार।

चुगी—दो लाख चालीस हजार।

कुल आमदनी तीन करोड़ चौवीस लाख पचहत्तर हजार रुपया वार्षिक थी जिसमे से दो लाख रुपए की जागीरें धर्म्मार्थ दान की हुई थीं। कुल आमदनी और खर्च का हिसाब पडित दीनानाथ रखते थे। खर्च कुल कितना होता था, इसका लेखा नहीं मिल सका, पर इतना अवश्य है कि मरते समय महाराज के खजाने मे कई करोड रुपए छोड़ गए थे।

चुगी महकमे के अफसर मिश्र रलाराम थे और उनके बाद उनके लड़के राजा साहबदयाल हुए। इनके सिवाय सर्दार छत्तरसिह, शेरसिह, श्यामासिंह अटारीवाला, सर्दार देसासिह और सर्दार लहनासिह भी महाराज के मुख्य दरबारियो मे से थे। पर दर्बार में केवल राजा ध्यान सिह और फकीर अजीजुद्दीन की तूती बोलती थी। इन्हीं ध्यानसिह की बदौलत इनके भाई गुलाबसिंह काश्मीर की गवर्नरी पा गए और अत को काश्मीर के वर्तमान राजवश के प्रतिष्ठाता हुए।

राजशासन के ढग का महाराज खूब समझते थे और यह अच्छे प्रकार से जानते थे कि चाहे जाट और सिक्ख सर्दार तलवार चलाने मे कैसे ही निपुण क्यों न हो राज्यशासन का काम जो कि दिमाग से सबध रखता है इनसे होने का नहीं। इसलिये उन्होंने सिक्खो के अलावा ब्राह्मण और मुसलमान लोगो को अपने दर्बार मे जवाबदेही के ओहदो पर रक्खा और उन लोगों की सलाह वे सर्वोपरि मानते थे। जमादार खुशहालसिह, राजा तेजासिह, राजा दीनानाथ, प० रलाराम,

दीवान अयोध्याप्रसाद, प० शङ्करनाथ इत्यादि नामी नामी दर्बारी महाराज के दर्बार में ब्राह्मण थे। अँगरेजों से मुठभेड़ होने के अवसर पर फकीर अजीजुद्दीन ही के समझाने से महाराज इस कार्य से विरत रहे और उन्होंने सधि कर ली थी। सौभाग्य से महाराज को अच्छे योग्य कर्मचारी मिले थे, पर इनके बाद ही सारी काया पल्ट गई और 'दिनन के फेर त सुमर होत माटी को' वाली कहावत चरितार्थ हुई, और वह सारे सामान किसी काम न आए। मन था पर कप्तान बिना जहाज क्योंकर चल सकता था ?

महाराज के दर्बारियों में सर्दार लहनासिंह एक बड़ा बुद्धिमान् सर्दार था। सूक्ष्म यन्त्रों की कारीगरी में इसका दक्ष होना इस बात का पता देता है कि रणजीतसिंह के दर्बार में अच्छे अच्छे दिमागी ताकत के लोग भी थे। सर्दार लहनासिंह अपने दिमाग से नए नए यन्त्रों का उद्भावन भी करते थे। कई नवीन तोपों का साँचा इन्होंने तैयार किया था और इनकी बनाई तोपें अलीवाल इत्यादि लड़ाई के कई मैदानों में चलाई भी गई थीं। इसके सिवाय इन्हें ज्योतिष और गणितविद्या का भी बेहद शौक था और कई भाषा के ये पंडित थे। इन्होंने एक घड़ी भी ऐसी बनाई थी जिससे चन्द्रमा की चाल, मिनिट घंटा के अलावा महीने के हिसाब का भी पता लगता था। यद्यपि महाराज को कभी 'सरस्वती' के दर्बार में झाँकने का अवसर नहीं हुआ था, पर सर्दार साहब की वे बड़ी प्रतिष्ठा करते थे। सर्दार लहनासिंह ऐसा न्यायी, पक्षपातरहित और सच्चा विश्वासी राजकर्मचारी लाहौर में दूसरा नहीं था। यद्यपि

विदेशी इतिहासकारों ने महाराज के किसी कर्म्मचारी का सर्वथा प्रसंशा नहीं की है, पर सर्दार लहनासिंह की तारीफ जी खोल कर की गई है। चाहे जो हो महाराज के दर्बार में यह एक अति योग्य कर्म्मचारी था।

सिक्खों में रजपूतों की तरह पहले सवारों ही का आदर अधिक था और पैदल सिपाही हेच समझे जाते थे, पर जब महाराज ने अँगरेजी पैदल सिपाहियों की योग्यता देखी तो वे चकित रह गए और उन्होंने फौरन अपनी सेना की काया पलट दी। सवारों की कदर न रही और उनकी जगह अच्छे अच्छे दक्ष फ्रेंच और अन्य युरोपियन जनरलों के अधीन पैदल सिपाहियों की सेना नवीन युरोपियन कवायद से सुशिक्षित होकर पंजाब केसरी के प्रचंड नख और दाँतों का काम देती थी तथा इसी सेना की बदौलत वे किसी को कुछ चीज नहीं समझते थे, पर इन उजड्ड सिपाहियों को काबू में रखना भी महाराज ही जानते थे क्योंकि उनके बाद इसी सेना को काबू में न रख सकने के कारण लाहौर राज्य नष्ट भ्रष्ट हुआ था।

महाराज के समय में दीवान मोकमचंद, मिश्र दीवानचंद इत्यादि नामी सर्दार भी थे जिनके नाम अन्यत्र कई जगह आ चुके हैं। ये ऐसे सर्दार थे जो खालसा सेना को तो काबू में रख सकते थे, पर इन सर्दारों ने अपना कोई उपयुक्त वंशधर नहीं छोड़ा जो पीछे से इस सेना को सँभाल करता।

नवाँ अध्याय ।

रणजीतसिंह का चरित्र ।

चाहे कोई कैसा ही प्रतापी और शूरवीर क्यों न हो उसकी प्रत्येक चाल चलन में प्राय कुछ विचित्रता नहीं होती। यद्यपि ऐसे नामी पुरुष की जीवनी पढनेवाले शायद समझते हैं कि ऐसे महापुरुषों के आत्म-चरित्र में कुछ विशेषता होगी, पर प्रकृति माता तो अपने सारे संतानों को एक ही नियम से पालन करती है इसलिये अन्य सब बातों में कुछ विशेषता होने पर भी निज शरीर संबंधी यावत् कार्य स्वाभाविक ही हुआ करते हैं। यद्यपि महाराज ने बडी बड़ी लडाइयाँ जीतीं, एक साधारण जागीरदार से स्वतंत्र राजा बन गए, बड़े बडे कट्टर अफगान और अमीर काबुल तक उनसे भय खाते थे, पर प्रकृति के साधारण नियम उनके शरीर पर वैसा ही प्रभाव डालते थे जैसा कि साधारण मनुष्यों पर। इस कारण से रणजीतसिंह ने यद्यपि सैकडों रण जीते पर अपने सबसे प्रधान वैरी 'कामदेव' के आगे वे बिलकुल पस्त हो गए थे और युवावस्था में मुरा नामक एक तवायफ पर ऐसे मोहित हुए थे कि उसके जिद करने पर उन्होंने मुसलमानी रीति से उससे निकाह भी पढाया था। इन दिनों मुरा का जमाना ऐसा कुछ चमका था कि उसके नाम से सिक्के भी चलाए गए थे और रणजीतसिंह के साथ हाथी पर उसकी सवारी भी निकलती थी। निकाह की

रसम बडी धूमधाम से की गई थी और उसके रहने के लिये एक अलग हवेली बनवा दी गई थी। निकाह पढवाने के बाद महाराज ने सिक्ख रीति से पुन उससे विवाह किया था। यद्यपि कई इतिहासकार कहते हैं कि मुसलमान और सिक्खो मे मेल जोल बढाने के लिये महाराज ने ऐसा किया था पर असली कारण तो वही 'मार' की मार मालूम पड़ती है। यह तो अन्यत्र लिखा ही जा चुका है कि राजनैतिक कारणो से रणजीतसिंह की माता और सास दोनो इनको सुदरी स्त्रियो के फदे मे वश कर राजकाज की बागडोर अपने हाथ ही मे रखना चाहती थीं और इसी कारण से इनके चरित्र के सुधार की तो कौन कहे उलटे ऐसे ऐसे अवसर वे जान बूझ कर उपस्थित कर देती थीं जिसमे महाराज "सुरा और अप्सरा" दोनों के चक्कर में पड कर मूर्ख और बेवश बने रहे, पर यद्यपि महाराज में कुछ चरित्र बल न होता तो यह कब सभव था कि इतने प्रलोभनो के बीच गोते लगाते हुए भी वे अपने कर्त्तव्य मे सचेष्ट रहते। यद्यपि कभी कभी महाराज "मदमत्त और अप्सरा-मत्त" हो जाते थे, पर उनके चरित्र का यह दृश्य बिलकुल प्राइवेट था। राजकार्य मे इस कारण से कभी तनिक भी ढील नहीं होने पाई थी। चाहे किसी हालत में हों राजकार्य उपस्थित होने पर वे पूरे मुस्तैद और कमर कसे तैय्यार हो जाते थे, जिससे इनके विपक्षियो ने, जो इनकी स्वाभाविक महानता को नहीं पहचानते थे मुँह की खाई और उनकी यह चाल जो साधारण राजाओं पर सफल हो जाया करती थी, रणजीतसिंह पर अपना वार न कर सकी, क्योंकि यद्यपि महा-

राज ने कई सुँदरी स्त्रियाँ घर मे डाल रक्खी थीं पर ऐशो अशरत मे उन्होंने अपने कर्तव्य को कभी नहीं भुलाया। राज कार्य और अपना कर्तव्य मुख्य और ऐशो अशरत गौण था। मुरा नामक वारागना से विवाह करने के उपरात महाराज हरिद्वार गए थे और वहाँ स्नान पूजा के अनतर दरिद्रो को करीब एक लाख रुपया उन्होंने बाँटा था। दीन दरिद्रो को और अपने सेवको मे रुपया बाँटने मे महाराज मुक्तहस्त थे। एक अवसर पर जब उनका युरोपियन अफसर अपने देश गया था तो महाराज ने उसे पचीस सा रुपये का पशमीना और पाँच हजार रुपया नगद दिया था। १८९० सवत में महाराज ने अमृतसर की एक और सुदरी वेश्या से विवाह किया था। इसका नाम गुलबहार था। इस विवाह के बाद महाराज ने एक बडा भयकर स्वप्न देखा जिसम चार निहगे सिक्ख महाराज को डरा रहे थे। स्वप्न-फल पूछने पर ज्योतिषियों ने बतलाया कि आप मुसलमानियों स विवाह कर जातिभ्रष्ट हो गए हैं, इसका विधिवत् प्रायश्चित और प्रतिमह दान इत्यादि कीजिए तब अरिष्ट मिटेगा। अस्तु महाराज ने इक्यावन तोले की सुवर्ण की मूर्ति बनवाकर अरिष्ट दान किया और पुन पोहल लेकर सिक्खो का सस्कार करवा कर वे शुद्ध हुए। इन दोनो वेश्याओ को तो रणजीतसिंह ने घर मे डाला ही था, पर महाराज की विवाहिता रानियाँ और भी कई थीं जिनके नाम इस प्रकार हैं—

रानी राजकुँवर (युवराज खडगसिंह की माता) सन् १८३८ मे परलोक सिधारी।

रानी रूपकौर इनसे सन् १८१५ ई० म विवाह हुआ।

रानी लक्ष्मी से १८२० ई० म विवाह हुआ और १८६७ में इनका परलोकवास हुआ।

रानी महताबकौर (माई सदाकुँवर की कन्या और शेरसिंह तथा तारासिंह की माता) इनसे सन १७९६ ई० म विवाह हुआ और १८१३ ई० में इनका परलोकवास हुआ।

राजदेवी और महताब देवी, राजा अनरुद्धचन्द कांगड़ेवाले की कन्याएँ थीं। इनमे से एक तो सन १८३५ मे मर गई थी। और दूसरी महाराज के संग सती हुई थी।

रानी रामदेवी। यह महाराजा के सामने ही परलोक सिधार गई। तिथि विदित नहीं, महाराज ने सर्दार साहबसिंह भगी की दो विधवा स्त्रियों से चादर डालने की प्रथा के अनुसार विवाह किया था। इनका नाम रतनकौर और दयाकौर था। इनके पुत्र पिशौरासिंह और मुलतानासिंह थे।

रानी चदकौर—सन् १८१५ मे विवाह हुआ और १८४० म मर गई।

गुलाबकौर—सन् १८३८ ई० मे महाराज के सामने ही मर गई।

रानी मेहनो। इन्ह ब्रिटिश गवर्नमेंट से ६९३०) रु० वार्षिक पेंशन मिलता थी।

अंतिम रानी जिंदा थीं, जो पंजाब के अंतिम राजा दलीपसिंह की माता थीं और जिन्होंने अपनी कुचाल से लाहौर का राज्य बारह बाट कर दिया था। यों सब मिला कर महाराज की उन्नीस रानियाँ थी, पर इतनी

रानियों के होते हुए भी वे राजकार्य्य मे सदा पूरे मुस्तैद रहते थे और कोसों लड़ाई के मैदान मे घोडे पर सवार हो धावे पर जाया करते थे। भोग विलास में आलसी होकर इन्होने अपनी स्वाभाविक वीरता, धीरता और कर्तव्यपालन का जरा भी नहीं भुलाया था। रणजीतसिंह के चरित्र मे यही विशेषता थी कि वे सदा सजग रहकर राजकार्य्य म डटे रहते थे। दीवान भवानीदास और प० दीनानाथ दोनों कर्मचारियों से राज्य की नित्य की आमदनी खर्च का ब्योरा महाराज स्वयम अवश्य सुनते और हरएक मुख्य मुख्य मद म पूछ ताछ करते और आज्ञा देते थे। यद्यपि राज्य के प्रत्येक पद पर विश्वासी कर्म्मचारी नौकर थे, पर बारी बारी प्रत्येक विभाग की बिना जाँच किए महाराज कभी सतुष्ट नहीं होते थे। आलस्य या किसी काम में जरा सा छिद्र भी इन्हे पसद न था। यद्यपि इनका रग साँवला, मुँह पर चेचक के दाग और एक आँख कानी थी पर चौड़े ललाट और श्वेत लबी दाढी से इनका चेहरा बडा रोबीला था। आँख अच्छी थी, उसकी चमक और तेजी ने कानी आँख की कसर निकाल दी थी। यह सदा पूरी खुली रहती थी। कभी किसी ने उन्हें आलस्य वश अधखुली आँख से नहीं देखा। चेहरे पर रोब ऐसा था कि रात दिन पास रहनेवाले बड़े बडे कर्म्मचारी भी आँख उठाकर इनकी ओर देखने की हिम्मत नहीं कर सकते थे। एक अवसर पर लार्ड बेंटिक साहब ने फकीर अजीजुद्दीन से पूछा कि "महाराज की कौन सी आँख कानी है ?" जवाब में फकीर साहब ने कहा कि "सच

पूछिए हजूर, तो मैंने तो आज तक महाराज की ओर रुआब के मारे कभी देखने की हिम्मत भी नहीं की, इसलिये उनकी कौन सी आँख नदारद है, यह बतलाने मे मैं बिलकुल असमर्थ हूँ।" पाठकगण इसी से समझ ल कि एक सुदर सुगठित देह न होने पर भी महाराज की आकृति कैसी तेजपूर्ण थी और उनके अधीनस्थ सरदार और कर्म्मचारि गण ज़रा से इशारे मे उनकी मनसा समझ जाते और आज्ञानुसार कार्य्य करते थे। किसी की भी ऐसी हिम्मत कभी नहीं पडा कि उनकी हुकुम-अदूली करने की हिम्मत करता। सब लोग कल के पुतले की तरह उनके आज्ञानुसार कार्य्य करते थे, मानो लोगों को शासन करने के लिये ही प्रकृति देवी ने रणजीतसिंह को गढा हो। यद्यपि बहुत दिनो से लकवे की बीमारी हो जाने के कारण इनका एक ओर का अग कुछ शिथिल हो गया था पर घोडे पर सवार होते ही वह ऐसी चुस्ती और मुस्तैदी से आसन जमाकर बैठते और चचल से चचल घोड़े को ऐसे सहज में वश कर सकते थे कि जिसे देख कर सहज ही मे अनुमान होता था कि ये एक चतुर सवार हैं। घोडा का शौक भी इन्हे बेहद था। अच्छे अच्छे काठियावाडी और अरबी घोडों का इनके यहाँ समह था और लिली नामक एक घोडी के लिये पेशावर से इन्होंने सहस्रो सेना कटवाई थी, यह अन्यत्र लिखा जा चुका है। सन १८३१ ईस्वी मे रोपड़ के मुकाम पर बृटिश रिसाल के मुकाबले मे इन्होंने अपने रिसाले के करतब दिखलाए थे और वाहवाही हासिल की थी।

महाराज-पोशाक भी बहुत सादी पहनते थे। प्राय देखा

गया है कि जो अच्छे अच्छे योग्य शासनकर्ता हो गए हैं वे अपने शृंगार की कुछ परवाह नहीं करते थे, केवल मूढ़ अयोग्य जन ही जेवरों से लदे रहते हैं। शीत के दिनों में केसरी रंग का पश्मीने का सादा चोगा और गर्मियों में मलमल का अंगा और वैसाही साफा, यही महाराज की साधारण पोशाक थी। पर हाँ, खास खास मौकों पर कोहनूर ऐसे दो एक अमूल्य जवाहिर भी वे धारण कर लेते थे। महाराज का तेज और प्रताप ऐसा था कि बूढ़े, पक्षाघातग्रस्त और काने कुरूप होने पर भी बड़े बड़े कट्टर सरदार और जागीरदार उनसे थर थर काँपते थे, क्योंकि ये लोग अच्छी तरह जानते थे कि इस कुरूप काने चेहरे के अंदर बड़ी प्रखर बुद्धि और बल का दिमाग छिपा हुआ है जो उनके ऐसे बलवानों को पस्त करके बस में ला चुका है और अब भी मौका पड़ने पर विद्रोह का कठोर दंड देने की सामर्थ्य रखता है। इसी कारण वृद्ध अवस्था में शरीर के शिथिल होजाने पर भी महाराज का प्रताप ज्यों का त्यों कायम था और राज्य प्रबंध अनायास चला जाता था। इन बातों से स्वतः ही महाराज की महानता प्रगट होती है। इनकी योग्यता और कदरदानी का हाल अन्यत्र लिखा जा चुका है क्योंकि यदि अच्छी तरह से जाँच जाँच कर ये उपयुक्त मनुष्यों को राजसेवा में नियुक्त नहीं करते और सेवकों से उदारता का बर्ताव नहीं रखते तो [illegible] था कि ये लोग ऐसी भक्ति से [illegible] सेवा [illegible]
जिसका नमूना फकीर अ[illegible]
पा चुके हैं। अपने प्रियप[illegible]

पुरस्कार खिलत इत्यादि देने के अलावा महाराज ने बड़ी-बड़ी जागीर भी दान की थीं और यह आवश्यक भी था क्योंकि जरूरत पड़ने पर इन जागीरदारों की सेना भी राज्य के बड़े काम की होती थी।

यद्यपि महाराज में कई अवगुण भी थे और अवगुणों से रहित तो परमात्मा ही है पर तिस पर भी गुणों के समूहों ने उनके दो एक अवगुणों पर पर्दा डाल दिया था। वीरवर नेपोलियन इत्यादि बड़े बड़े शूरवीर और उस समय के राजनीतिज्ञ महापुरुषों में हम महाराज रणजीतसिंह की गिनती अनायास कर सकते हैं। राजनीति का पाठ इन महापुरुषों की तरह उन्हें भी स्वभावसिद्ध था क्योंकि गुरु गोविंदसिंह जी की शिक्षा के अनुसार यद्यपि मुसलमानों का भरोसा करना अनुचित प्रतीत होता है पर महाराज उनकी शिक्षा का असल मर्म समझते थे और कई प्रबल अफगान और पठान सरदारों को उन्होंने ऐसी योग्यता से शासन कर अपनी सेवक मंडली में भुक्त कर रक्खा था कि जिससे राज की शोभा के अलावा वाहवाही भी हासिल होती थी क्योंकि विजित शत्रुओं के प्रति उदारता का वर्ताव ही राजनीति की एक बड़ी चाल है और लोगों में वाहवाही लूटने का भी सहज सोपान है।

चाहे महाराज कितनी ही प्रबलता से किसी शत्रु पर आक्रमण करें और उसके गढ और किले को अधिकृत करने में चाहे उन्हें कितनीही कठिनाई क्यों न उठानी पड़े विजित शत्रु के साथ वे सदा सदय और उदार व्यवहार करते थे, यहाँ तक कि इनके दरबार में एक दल ऐसे सरदारों का अलग ही था

जिनका राज्य रणजीतसिंह ने छीन लिया था या जिनकी जागीरें उन्होंने वरजोरी दखल कर ली थीं। इन लोगों के साथ ऐसी प्रीति और उदारता का व्यवहार महाराज ने किया कि ये लोग अपना पहले का अपमान बिल्कुल भूल कर महाराज के हितैषी सेवक वन गए। इन्ही मे मुलतान के शूरवीर गवर्नर मुजफ्फर खाँ के दो पुत्र और पेशावर की पहाड़ी सीमा के कई कट्टर अफगान सरदार महाराज की सेवा मे हरदम तैयार रहते थे।

यद्यपि गुरु गोविंदसिंह जी ने मादक द्रव्य परित्याग के लिये उपदेश दिया था पर तमाकू पीने की विशेष मनाही थी, इसलिये पीछे से सिक्ख लोग तमाकू के नाम से बहुत चिढते थे, पर शराब पीने मे कुछ परहेज नहीं रखते थे और इसका प्रचलन उनमे बहुतायत से होगया था, यहाँ तक कि महाराज ऐसे बुद्धिमान मनुष्य भी कभी कभी सुरादेवी की आराधना मे बिल्कुल बेहाल होजाते थे, पर खूबी यह थी कि उस अवस्था मे भी वे राजकार्य्य और राजनीति की चालो से नहीं चूकते थे। एक ओर जब नौनिहालसिंह के विवाहोत्सव पर कमाडर सर हेनरी फेन के साथ महाराज ग्लास पर ग्लास सुरा चढा रहे थे तो दूसरी ओर वे कमाडर साहब से ब्रिटिश और रूस का राजनैतिक सबध, विदेशी युरोपियन राष्ट्रों की राज्य व्यवस्था, सैन्य-बल, अफगानिस्तान और फारस का भविष्य ऐसे ऐसे गूढ प्रश्न भी करते जाते थे, यह अन्यत्र लिखा जा चुका है। जो कोई विदेशी युरोपियन इनके दरबार मे आता वह इनके आदर सत्कार, शिष्टाचार और राजनीति-कुशलता की बातों से

मोहित होकर जाता था और आश्चर्य करता था कि इस अपढ़ जाट को ऐसी तीक्ष्ण राजनैतिक बुद्धि कहाँ से आई ? सच पूछिए तो हम रणजीतसिंह को बिना सकोच बिस्मार्क और नेपालियन के समान आसन दे सकते हैं। यदि सतलज के पार ब्रिटिश बाधा न होती तो कौन कह सकता है कि रणजीतसिंह का राज्य विस्तार कहा तक होता ?

अत मे यदि एक बात छोड दी जाय तो रणजीतसिंह के चरित्र मे कसर रह जायगी। वह यह थी कि महाराज अपनी ऐसी श्वेत लबी दाढी वाले लोगो को अपने पास रखना बहुत पसद करते थे और इसी कारण कई लबी लबी श्वेत दाढी वाले पुरुष इनके दरबार मे सदा उपस्थित रहते थे, जो कई रुपया रोज केवल दाढी धोने के लिये महाराज से पाते थे और अपनी अपनी सफेद लबी दाढियो मे इत्र फुलेल मल कर उन्हे बडी शोभायुक्त बनाए रखते थ। चाहे जो हो पर अपनी ऐसी शक्ल के कई मनुष्यों को सदा पास रखने मे एक राजनैतिक चाल भी थी।

महाराज यद्यपि पढे लिखे नहीं थे पर अपने ढग पर सदा पूरा न्याय करते थे। यद्यपि खालसा पथ मुसलमानों का घोर विरोधी है पर महाराज अपनी सारी प्रजा का चाहे वह सिक्ख हो या मुसलमान एक समान पुत्रवत् पालन करते थे। उन्होंने कभी अपने धर्म या जाति का पक्षपात नहीं किया। एक अवसर पर एक सिक्ख ने एक मुसलमान पर सूअर का चमडा फेक दिया था। जब वह मुसलमान महाराज के यहाँ फर्य्यादी हुआ तो महाराज ने उस सिक्ख को एक बारही

कत्ल कर देने की आज्ञा दे दी। जब दर्बारी लोगों ने कुछ हिमायत की तो यही जवाब दिया कि "यदि ऐसा कठोर दंड न दूगा तो हमारे सिक्खो के राज्य मे सिक्ख लोग मेरी असहाय मुसलमान प्रजा को नोच खायँगे।" यही कारण था कि बड़े बड़े विजित कट्टर मुसलमान सरदार भी भक्तिपूर्वक महाराज की सेवा मे तत्पर रहते थे।

दसवाँ अध्याय ।

रग मे भंग और रणजीतसिंह का स्वर्गारोहण ।

'आज लाहौर के शालाबाग में यह कैसा उत्सव हो रहा है ? प्रत्येक पेड़ की शाखाओ से रग बिरंगे बिलौरी फानूस जगमगा रहे हैं और बाग की रविशा पर लगातार मोतियों की माला ऐसी दीपमालिका हो रही है । बाग के सुरम्य मार्गों पर गुलाब और केवड़े का छिडकाव हो गया है जो मिट्टी की सोंधी सुगध के साथ अपनी अनुपम सुगंधि से मन को प्रफुल्लित और मुग्ध कर रहा है। अगणित फव्वारे छूट छूट कर मानों उत्सव के उमग से उमॅग रहे हैं तथा गुलाब, बेला और जुही की महक से सारा बाग नदनकानन बन रहा है । बाग के मार्ग पर दोनो ओर सिक्ख वीर दाढी उमेठे और मोछो पर ताव दिए मखमली और जरदोजी पोशाक पहने तथा सिर पर बनारसी जरी का साफा बाँधे और हाथो मे नगी तलवार लिए बड़ी शान से खड़े हैं और एक ओर मधुर वाद्य ध्वनि हो रही है। इसी बीच मे तोप की ध्वनि हुई और सारे बाजे एक स्वर से बज उठे तथा ब्रिटिश गवर्नमेंट के प्रतिनिधि लार्ड अकलैंड साहब महाराज रणजीतसिंह के हाथ में हाथ दिए आते हुए दिखाई दिए। लाट साहब इवनिंग ड्रेस में थे और महाराज अपनी सादी जाफरानी पशमीने की पोशाक पहने और सिर पर उसी रग का पशमीने का साफा बाँधे हुए थे । पीछे पीछे फकीर अजीजुद्दीन और राजा ध्यानसिंह बडे अदब मे आ रहे थे । इन

लोगो ने आकर सगमर्मर की बारहदरी मे पैर रक्खा जहा असंख्य बिल्लौरी झाड फानूस जगमगा रहे थे और हरएक कोन पर पुष्पों के गुलदस्ते लगे हुए थे। नीचे फारस का मखमली गलीचा बिछा हुआ था और एक लबा आबनूस का टेबुल बनारसी कमखाब के आवरण से ढका हुआ शोभायमान था जिसके बीचोबीच मे चादी सोने के गगाजमनी गुलदस्तो मे पुष्पो की अनुपम बहार थी और रिकाबियो में नाना प्रकार के स्वादिष्ट मेवे और फल तथा काच के ग्लासों मे लाल अँगूरी शराब चमक रही थी। महाराज ने बडी खातिर से लाट साहब को अपने बगल में सोने की कुर्सी पर बिठाया और दोनों के आसन पर विराजते ही सामने रग बिरगी पोशाक पहने सुदरी वारागनाए शुद्ध ताल स्वर से नृत्य गीत कर अपना हाव भाव दिखाने लगीं। कुछ देर बाद सुन्दरी रमणियों का एक दल आया जो महीन रेशमी वस्त्र पहने थीं और हाथों मे पुष्पों के धनुश बाण लिए थीं, मानो साक्षात कामदेव की सेना थी। इन्होंने आकर कई प्रकार के देशी नृत्य दिखाए और सारे दर्शकों को मोहित कर दिया। उधर महाराज अपने हाथों से भर भर कर अगूरी शराब लाट साहब को देते जाते थे और स्वास्थ्यपान की ओट मे दोतरफा खूब छन रही थी। महाराज लाट साहब की खातिर मे निर्विघ्न मन थे और वे भी बडे भद्रतापूर्वक "थैंक यू" कह कर बार बार कृतज्ञता जतला रहे थे। नाचरग का जलसा जमा हुआ था और बीच बीच मे दोनो सरदार स्वास्थ्य-पान के साथ तश्तरियो मे से मेवे और फल भी खाते जाते

थे । इसी तरह आधी रात तक महफिल गरम रही और रात एक बजे के करीब लाट साहब विदा हुए । दूसरे दिवस सन्ध्या को पुन लाट साहब आमन्त्रित किए गए और उसी प्रकार से जलसे का सब समा बँध गया और अँगूरी शराब उडने लगी और तवायफों के गाने और तबले की ठनकार स महफिल गरम हो उठी । लाट साहब को ग्लास भर भर कर महाराज अँगूरी जाम पिला रहे थे, ऐसे समय मे एकाएक महाराज को बड़ी जोर से कँप कँपी आई और कुर्सी पर सहसा उनका सिर ढुलक गया । बगल ही मे लाट साहब बैठे हुए थे, एकाएक घबडा कर उठ खड़े हुए, तब तक महाराज की आँखें उलट गई और मुँह से पानी बहने लगा । सारा जलसा स्तंभित हो गया ! मानो कमल वन पर सहसा वज्रपात हुआ ! सब लोग घबड़ा कर इधर उधर दौडने लगे । सबके चेहरे पर परेशानी और घबराहट झलकने लगी और फौरन हकीम और डाक्टरो का ताँता लग गया । हकीमो ने कहा कि वृद्ध अवस्था के कारण पुन सहसा लकवे की बीमारी का आक्रमण हुआ है । महाराज की जबान बद हो गई थी । यद्यपि महाराज की यह हालत थी तो भी वे इशारे से सब राजकार्य के यथावत् जारी रखने की आज्ञा दे रहे थे, यहाँ तक कि इसी समय मे सिक्खो की सेना अँगरेजो के साथ काबुलपर चढ़ी थी और उसने दोस्त मुहम्मद को सिंहासन से उतार कर शाहसुजा को काबुल के सिंहासन पर बैठाया था । यद्यपि महाराज सख्त बीमार थे पर वे सब कागजो को स्वय सुनते और इशारे से

आज्ञा देते थे । महाराज की
होती जाने पर भी इस चढ़ाई का
जारी रक्खा । ता० ११ जुलाई को
क़ा क़िला भी ले लिया । इधर कई
वैद्यो के इलाज होते रहने पर भी
सुधर न सकी और दिन पर दिन
तो बुद्धिमान महाराज को भी भास
का समय आ पहुँचा । अस्तु । इस
ही उन्होंने युवराज खड्गसिंह को बु
और अपने विश्वासी अमात्य राजा
बीमारी के समय एक पलक भी
सामने बुला कर युवराज का हाथ
मुँह से बोल सक्ते ही न थे । स
था । उन्होंने एक खिलत मँगवा कर
ध्यानसिंह को दिलाई और इशारे से
की सलाह के अनुसार चलने की ता
साहब का पाठ सुनने लगे । धीरे
आने लगी और हाथ पैर ठंढे पड़न
प्रियपात्र दीवान राजा ध्यानसिंह ने
आया जाना तो तत्काल ही खजाने से
निकलवा कर उसका एक चबूतरा
मूल्य दुशाला बिछा कर महाराज को उस
ध्यानसिंह के आँसू नहीं रुकते थे और
को वे अपने आँसुओं से भिगो रहे थे । उन्हें

जिस मनुष्य ने उन्हें सामान्य हरकारे से प्रधान वजीर बनाया और जो अपने पुत्रवत् सदा उनपर कृपा दृष्टि रखता था, आज वह पयान कर रहा है। अस्तु। ध्यानसिंह बड़े शोकातुर हो रहे थे। देखते देखते महाराज की आँखे उलट गईं और आषाढ़ मास की अमावास्या संवत् १८९६ विक्रमी तद्नुसार २७ जून सन १८३९ ईसवी को गुरुवार के दिन छ घड़ी दिन रहे महाराज चल बसे। जिस चबूतरे पर महाराज मरे थे वह दीन दुखियों को लुटा दिया गया और ऐसा भी जनप्रवाद है कि मरते समय महाराज ने "'कोहनूर' नामक हीरे को श्रीहरि मंदिर जी में चढा जाना चाहा था पर खजांची मिश्र बेलीराम ने यह कह कर देने से इनकार किया कि "यह राज्य की सम्पति है, खास महाराज की नहीं और अब महाराज खड्गसिंह इसके अधिकारी हैं।" अस्तु जो हो, वह अमूल्य हीरा श्रीहरि मंदिरजी में भेंट नहीं हुआ, नहीं तो शायद आज दिन भी भारत में विद्यमान रहता। जब महाराज का अंतिम श्वास निकल चुका तो राजा ध्यानसिंह बड़ा विलाप कर रोने लगे और महलों में कोहराम मच गया क्योंकि रणजीतसिंह अकेले उन्नीस रानियों को विधवा कर गए थे। रात भर इसी तरह रोने पीटने में बीता। प्रातःकाल महाराज को शुद्ध गंगाजल से स्नान करवा कर जो इसीलिये हरिद्वार से मँगाया गया था, केसर चंदन का लेपन किया गया और राजसी पोशाक तथा रत्नजटित जेवरों से शोभित करके पाँचो हथियार उनके अंग में लगाए गए और बड़े ठाट से बने हुए सुवर्ण के रत्नजटित विमान पर उनको

लाश रक्खी गई । बड़े बड़े सरदारों ने इस विमान को कंधे पर उठा कर श्मशान भूमि की ओर पयान किया। साथ में चार रानियाँ सती होने की इच्छा से निराभरण श्वेत रेशमी वस्त्र पहने अरथी के पीछे पीछे जा रही थीं। इनके पीछे महाराज की शरीर रक्षक सेना नंगी तलवार लिए जा रही थी और राजा ध्यानसिंह नंगे पैर विलाप करते चमर डुलाते हुए जा रहे थे। साथ की सारी सेना और अगणित प्रजा वृन्द जो संग हो लिए थे महाराज रणजीतसिंह का गुण बखान कर विलाप कर रहे थे। सर्व्वत्र शोक छाया हुआ था। विमान पर से लाखों की अशर्फियाँ लुटाई गईं और एक रानी अपने जेवर भी लुटाती जाती थी। धीरे धीरे शोक सूचक वाद्य ध्वनि हो रही थी और युवराज खड्गसिंह तथा बड़े बड़े सर्दार नंगे सिर और नंगे पैर सिर नीचा किए चले जा रहे थे। सब की आँखों से अश्रु प्रवाह बह रहा था। ध्यानसिंह को तो रोते रोते हिचकी बँध गई थी । श्मशान भूमि में पहुँचने पर चंदन की बड़ी भारी चिता बनाई गई और रणजीतसिंह का शरीर उस पर रक्खा गया। चारों रानियाँ महाराज का सिर गोद में लेकर चिता पर बैठ गईं और आठ लौंडिया महाराज के चरण के पास जा बैठीं । महाराज की छाती पर श्रीमद् भगवद्गीता की पुस्तक रक्खी गई और युवराज खड्गसिंह ने वेद रीत्यानुसार चिता में अग्निप्रदान की तथा एक बड़ी चादर जिसमें नाना प्रकार की औषधियाँ और मेवे टँके हुए थे घृत में तर करके सब सतियों के सिर पर से चिता पर डाल दी गई और राज

सम्मुख मृत महाराज के चरण स्पर्श करके लाहौर राज्य के विश्वासी सेवक बने रहने की शपथ की। अग्नि धधक उठी और घृत तथा सुगंधित तेल की प्रबल धारा चिता पर पड़ने लगी जिससे आन की आन में प्रबल गर्जन के साथ अग्नि धूधू कर जलने लगी और चारों दिशाएँ सुगंधि से परिपूर्ण हो गई। राजा ध्यानसिंह ने बड़ा विलाप करते हुए चिता में कूदना चाहा पर लोगों ने उन्हें पकड़ लिया। देखते देखते प्रतापी यशस्वी महाराज रणजीतसिंह पंजाब केसरी का शरीर बारह सतियों के साथ जल कर भस्म हो गया। खाली राख ही शेष रह गई। उनकी कर्म्मवीर आत्मा किसी अन्य कर्म्मलोक में जा विराजी और जगत् की नश्वरता का प्रमाण प्रत्यक्ष दे गई। किसी कवि ने सच कहा है—

रहा न कोई यहाँ रही है न कोई यह जाने सब कोई पै न माने मोह परिगे। हाथी और घोड़े रथ छोड़े सब ठौर ठौर भौनन में गाड़े भूरि भाँडे से बिसरिगे। कहे छविनाथ रघुनाथ के भजन बिन ऐसे ही बिचारे जन्म के दिन बिसरिगे। जंग वाले, जोर वाले, जाहिर जरब वाले, जोश वाले, जालिम चिता की आग जरिगे।

समाप्त।

रणजीतसिंह का वंशवृक्ष ।

चौधरी तख्तमल

भागमल्ल (गुरु हरगोविंद के समय शिष्य, (सिक्ख) हुआ)

भाई बुड्ढा (गुरु गोविंद के समय आनदगढ़ मे लड़ा था)

- घदासिंह (सिधान वालियो का पूर्व्व पुरुष)
  - चरतसिंह
    - माहासिंह
      - रणजीतसिंह महाराज (जन्म १७८० ईसवी, मृत्यु १८३९ ईसवी, ५९ वर्ष की उम्र मे)
        - खड्गसिंह (महाराज) (१८०२ ४०)
          - कुंवर नौनिहाल सिंह (महाराज)
        - शेरसिंह (महाराज) (१८०७-४३)
          - प्रताप
          - मेवा
          - शिवदेव
        - तारासिंह (१८०७ ५६)
        - मुलतानसिंह (१८१९ ४६)
          - फतहसिंह
        - कश्मीरासिंह १८४४ में मरा
        - पिशौरासिंह
          - जगजोतसिंह
            - अमरसिंह
        - दिलीपसिंह (महाराज) (इन्हीं के समयमें पंजाब अंगरेजों के अधीन हुआ) ईसाई होकर विलायत में मरे।
          - विक्टर डिलीप सिंह (विलायत मे मरे)
  - दलसिंह
- नवधासिंह
  - चेतसिंह
  - मगोसिंह

मनोरंजन पुस्तकमाला ।

अब तक निम्नलिखित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं ।

(१) आदर्श जीवन—लेखक रामचंद्र शुक्ल ।
(२) आत्मोद्धार—लेखक रामचंद्र वर्म्मा ।
(३) गुरु गोविंदसिंह—लेखक वेणीप्रसाद ।
(४) आदर्श हिंदू १ भाग—लेखक मेहता लज्जाराम शर्मा ।
(५) " २ " "
(६) " ३ " "
(७) राणा जंगबहादुर—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा ।
(८) भीष्म पितामह—लेखक चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्म्मा ।
(९) जीवन के आनंद—लेखक गणपत जानकीराम दूबे बी. ए. ।
(१०) भौतिक विज्ञान—लेखक संपूर्णानंद बी. एस सी., एल. टी. ।
(११) लालचीन—लेखक व्रजनंदन सहाय ।
(१२) कबीरवचनावली—संग्रहकर्त्ता अयोध्यासिंह उपाध्याय ।
(१३) महादेव गोविंद रानडे—लेखक रामनारायण मिश्र बी. ए. ।
(१४) बुद्धदेव—लेखक जगन्मोहन वर्म्मा ।
(१५) मितव्यय—लेखक रामचंद्र वर्म्मा ।
(१६) सिक्खों का उत्थान और पतन—लेखक नंदकुमार देव शर्म्मा ।

(१७) वीरमणि—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम ए.
और शुकदेव बिहारी मिश्र बी ए।

(१८) नेपोलियन बोनापार्ट—लेखक राधामोहन गोकुलजी।

(१९) शासनपद्धति—लेखक प्राणनाथ विद्यालंकार।

(२०) हिंदुस्तान, पहला खंड—लेखक दयाचंद्र गोयलीय
बी ए।

(२१) ,, दूसरा खंड— ,

(२२) महर्षि सुकरात—लेखक वेणीप्रसाद।

(२३) ज्योतिर्विनोद—लेखक संपूर्णानंद बी एस सी, एल टी

(२४) आत्मशिक्षण—लेखक श्यामविहारी मिश्र एम ए
और शुकदेवबिहारी मिश्र बी ए।

(२५) सुंदरसार—संग्रहकर्ता हरिनारायण पुरोहित बी ए।

(२६) जर्मनी का विकास, १ ला भाग—लेखक सूर्यकुमार वर्म्मा।

(२७) जर्मनी का विकास, २ रा भाग—लेखक ,, ,,

(२८) कृषि कौमुदी—लेखक दुर्गाप्रसाद सिंह एल ए जी।

(२९) कर्त्तव्य शास्त्र—लेखक गुलाबराय एम ए, एलएल बी

(३०) मुसलमानी राज्य का इतिहास, पहला भाग—लेखक
मन्नन द्विवेदी बी ए।

(३१) मुसलमानी राज्य का इतिहास, दूसरा भाग—लेखक
मन्नन द्विवेदी बी ए।

(३२) महाराज रणजीतसिंह—लेखक वेणीप्रसाद।